प्रकाशक.—
नाथूराम प्रेमी,
मालिक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई

मुद्रक —
द. ग. सावरकर,
श्रद्धानंद मुद्रणालय, खटाव भुवन
गिरगांव बम्बई न. ४

निवेदन ।

अब हिन्दी पाठकोंके निकट अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक जेम्स एलेनका नाम सुपरिचित हो चुका है । क्योंकि गत कई वर्षोंमें उनके आठ दस ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद हो चुके हैं और वे हिन्दीभाषाभाषी-समाजमे बडी रुचिसे पढे जाते हैं । एलेन महाशय बडे ही ज्ञानी और अन्तर्दृष्टा पुरुष हे । उनके विचारोंके अध्ययन और मननसे बडी ही शान्ति मिलती है और मनुष्यके चरित्रपर उनका बहुत ही गहरा ओर स्थायी प्रभाव पडता है । यह छोटीसी कृति भी उन्हींके 'बाइवेज आफ ब्लेसेडनैस' (Byways of Blessedness) नामक ग्रन्थका अनुवाद है । जहाँ तक मै जानता हूँ अभीतक इस ग्रन्थका कोई हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ है, इसीलिए मैने यह प्रयत्न किया है । अनुवाद यथासंभव सावधानीके साथ किया गया है । कहीं कहीं, जहाँ उचित ज्ञात हुआ है वहाँ, थोडा बहुत परिवर्तन और परिवर्धन भी करना पडा है । परन्तु ऐसा क्वचित् ही हुआ है ।

हिन्दीमें पुस्तक लिखनेका मेरा यह पहला ही प्रयत्न है । इसलिए इसमें बहुतसी त्रुटियाँ रह गई होंगी जिनके लिए मे उदार पाठकोंके निकट क्षमाप्रार्थी हूं । यदि हिन्दीप्रेमियोंने मेरी इस तुच्छ कृतिको अपनाया, तो मैं और भी कोई सेवा करनेका साहस कर सकूँगा ।

इस पुस्तकको ऐसे अच्छे रूपमे प्रकाशित करनेके कारण मैने इसका सर्व स्वत्व हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयके स्वामियोंको समर्पण कर दिया है और उनकी इस स्वीकृतिके लिए मै उनको धन्यवाद देता हूँ ।

खाचरियावास फोर्ट,
(जयपुर स्टेट)
श्रावण, सं० १९७७ वि०

विनीत—
ठा० कल्याणसिंह ।

पूर्व-वचन ।

ब्रह्मदेशमें सडकोंके समीप, समान दूरीपर, मार्गकी धूलिसे परे, वृक्षोंकी शीतल छायाके नीचे, काठकी धर्म्मशालायें बनी हुई है। इन धर्मशालाओंमें वहांके दयालु ग्रामवासियोंने अपना धर्म्म समझकर अन्न-जलका प्रबन्ध कर रक्खा है। हारा-थका यात्री इस अन्न-जलसे अपनी भूख और प्यासको बुझाता और अल्पकालपर्यन्त विश्राम लेता है।

जीवनके विशाल मार्गपर भी इसी प्रकारकी विश्रामशालायें है। क्रोधकी धूप और निराशाकी धूलिसे दूर, विनीत बुद्धिकी शीतल और सुखद छायाके नीचे, साधारण और सीधे सादे शान्तिके विश्रामस्थान और आनन्दकी छोटी छोटी अप्रकट पगडडियां है, जहां हारा-थका और पैरफटा पथिक पुष्टि और विश्रामको प्राप्त कर सकता है।

इन पगडडियोंको भूलकर पीछे छोड जानेसे आगे चलकर दुःख होता है। जनसमूह जीवनके राजमार्गपर किसी मायावी सीमान्तको प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हुआ, स्थूलदृष्टिसे जो तुच्छ जान पड़ते है उन सत्य विचारोंके आश्रमोंकी अवहेलना करता हुआ, शीघ्रतासे भागता जारहा है और आनदपूर्ण कर्मकी सकीर्ण और छोटी पगडडियोंको तुच्छ समझकर पीछे छोडता जाता है। घड़ी घड़ी और क्षण क्षणमें अगणित मनुष्य बेसुध और परिश्रान्त होकर गिरते जाते है और असख्य जन हृदयकी भूख, प्यास और थकानसे नाशके समीप पहुंच रहे है।

परन्तु वह मनुष्य जो इस उत्तेजित जनसमूहसे हटकर उन पगडडियोंको— जो यहाँ बताई जावेंगी—देखेगा और उनपर चलेगा, उसके कर्दमाक्त पैर आनन्दके अनुपम पुष्पोंपर पडेंगे, उन पुष्पोंके सौन्दर्यसे उसके नेत्र प्रफुल्लित होंगे और उनकी सुगन्धिसे उसके मनको ताजगी मिलेगी। इस प्रकार सुशक्त और पुष्ट होकर वह जीवनके ज्वर और सन्निपातोंसे बचेगा, परिश्रान्त होकर न धूलमें गिरेगा, न मार्गमे नष्ट होगा—सफलताके साथ जीवन-यात्राको समाप्त करेगा।

विषय-सूची ।

आनन्दकी पगडंडियाँ ।

१—सत्य आरम्भ ।

सब साधारण वस्तुएँ, प्रत्येक दिनके काम-काज—जो घंटेमें आरभ होकर घंटेमें ही समाप्त होते है, और हमारे सन्तोष तथा असन्तोष—ये सब एक प्रकारकी सीढियाँ है जिनसे हम ऊपर पहुँच सकते है।

हमारे पखे नहीं है जिनसे हम उड सकें, परन्तु हमारे पैर तो है जिनसे हम कूद-फाँद सकते और ऊँचे चढ सकते है। —लांगफैलो।

मनुष्यके जीवनके साधारण कार्यो, साधारण नियमों और आकाक्षाओंको सुन्दर रगोंमें प्रकाशित करना मुझे रुचिदायक है। —ब्राऊनिंग।

मनुष्य-जीवन आरम्भोंसे परिपूर्ण है। हर दिन वल्कि हर घड़ी प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ आरम्भ करता है। वहुतसे कार्य आरम्भमें लघु और तुच्छ दिखते हैं, परन्तु वास्तवमें वे वहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं।

स्थूल संसारमें देखो, प्रत्येक कार्य अल्प आरम्भसे उठता है। वड़ीसे वडी नदी जहाँसे आरम्भ होती है वहाँ इतनी संकीर्ण होती है

कि उसको टिड्डी भी लाँघ जा सकती है। बड़ा प्रचंड तूफान वर्षाकी थोड़ोसी बूँदोंसे आरम्भ होता है। वह विशाल वट-वृक्ष जो हजारों वर्षोंके शीतकाल सहन कर चुका है किसी दिन छोटासा पौधा था। बुझती हुई दियासलाई कहीं असावधानीसे गिर जाय, तो एक विशाल नगरको भस्म कर सकती है।

इसी प्रकार सूक्ष्म संसारमें देखो, महत्ता लघुतासे आरम्भ होती है। एक साधारण विचारसे किसी अद्भुत आविष्कार या शिल्पके किसी चिरस्थायी कार्यका आरम्भ होता है। न्यूटनने पतंग उड़ाते उड़ाते विद्युत् (बिजली) के नियमोंका आविष्कार किया था। मुखसे निकले हुए एक वाक्यसे इतिहासका फेरफार हो सकता है। एक पवित्र विचारके करनेसे संसारके उद्धारकी शक्तिका ज्ञान हो सकता है और एक क्षणिक पाशविक विचारसे एक घोर अत्याचार हो सकता है।

ऊपर कही हुई बातोंसे अब तुम्हें आरम्भका महत्त्व प्रतीत हो गया होगा। अब तुम्हें ज्ञात हो गया होगा कि किसी कार्यका बिगाड़ और सुधार उसके आरम्भपर बहुत कुछ अवलम्बित है। तुम जानते हो कि तुम कितने आरम्भ करते हो और उनका क्या महत्त्व है। यदि नहीं जानते हो, तो जरा मेरे साथ आओ और इस आनन्दकी पगडंडीको खोजो। क्यों कि यदि इस पगडंडीको बुद्धिमत्ताके साथ प्राप्त कर लोगे, तो यह तुम्हारे लिए आनन्द, शक्ति, और धैर्य-दायक होगी।

कार्यका आरम्भ ही उस कार्यका कारण है। जहाँ कारण है वहाँ उसके एक या एकसे अधिक परिणाम अवश्य होंगे और परिणाम भी वैसे ही होंगे जैसा कारण है। किसी कार्यका जिस प्रकारका आरम्भ होगा वैसा ही उसका परिणाम होगा। जहाँ आरम्भ है वहाँ अन्त, पूर्णता, परिणाम और उद्देश्य भी अवश्य होगा। मनुष्य

घरके द्वारसे मार्गमें आता है और मार्गसे चलकर किसी निर्दिष्ट स्थानको पहुँचता है। इसी प्रकार आरम्भसे परिणाम प्राप्त होता है और परिणामसे सम्पूर्णता।

आरम्भ जैसा अच्छा या बुरा होगा ठीक वैसा ही उसका अच्छा या बुरा परिणाम होगा। यदि सावधानी और विचारसे कार्योंके कुत्सित आरम्भोंसे तुम अपनेको बचाओगे, तो उनके दुष्परिणामोंसे तुम स्वतः ही बच जाओगे और सुपरिणामोंके फल पाओगे।

कई ऐसे भी आरम्भ हैं जिनपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं चल सकता। ये आरम्भ तुम्हारे बाहर, तुम्हारे चारों तरफ, संसारके प्राकृतिक पदार्थोंके या अन्य मनुष्योंके हैं जिनको तुम्हारे ही समान कार्य-स्वतन्त्रता है। उदाहरणके लिए देखो, वर्षा चाहे जब समय कुसमय बरस जावे, उसपर तुम्हारा वश नहीं है। चोर चाहे जब चोरी कर जाय, उसके कार्यके आरम्भपर तुम्हारा वश नहीं है। उन आरम्भोंसे तुम्हें कुछ प्रयोजन नहीं है। तुम अपनी शक्ति और ध्यानको उन आरम्भोंकी ओर लगाओ, जिनपर तुम्हारा पूर्ण वश और अधिकार हो और जिनसे ऐसे उलझे हुए परिणाम उत्पन्न होते हों जिनसे तुम्हारा जीवन बना हुआ है। ये आरम्भ तुम्हारे निजके विचारों और कार्योंके हैं। तुम जिन नाना प्रकारके कार्योंके अनुभव करते हो उनके सम्पादनमें जो तुम्हारा मनोभाव होगा उसमें ही वे आरम्भ मिलेंगे। बल्कि यों समझो कि तुम्हारी दिनचर्या और तुम्हारे जीवनमें—जो तुम्हारा अन्तर्जगत् है—तुम जो जो आरम्भ करते हो केवल उनपर तुम्हें लक्ष रखना चाहिए। जीवनके आनन्दके लिए सबसे सीधा-सादा आरम्भ विचारने और करने योग्य यह है कि दिनचर्याको—जिसको हम सब प्रतिदिन करते हैं—किस प्रकार आरम्भ किया जाय।

हमें देखना चाहिए कि सूर्योदय होनेपर हम अपनी दिनचर्याको किस प्रकार आरम्भ करते है, किस समय उठते हैं और किस प्रकार अपने कर्तव्योंका आरम्भ करते हैं; प्रत्येक नवीन दिनके पवित्र जीवनमें किस प्रकारके ध्यानसे उद्यत होते हैं और इन महा प्रश्नोंका हमारा अन्तःकरण क्या उत्तर देता है। इससे हमें यह ज्ञात हो जायगा कि प्रतिदिनके उचित अनुचित आरम्भहीपर समस्त दिनका सुख या दुःख अवलम्बित है। यदि प्रत्येक दिन विवेकसे आरम्भ किया जायगा, तो सारे दिन भर आनन्द मंगल रहेगा और जीवनके आदर्श आनन्दमें न्यूनता नही रहेगी।

प्रातःकाल शीघ्र उठना ही दैनिक कार्योंका उचित और सबल आरम्भ करना है। यदि प्रात. समय तुम्हें कोई विशेष कार्य न करना हो, तो भी उचित समयपर आलस्यको त्यागकर दैनिक कामोंको सबलतासे आरम्भ करना अपना मन्तव्य बना लेना चाहिए। यदि दिनोदयके समय तुम अपनी दिनचर्याको निर्बलताके साथ आरम्भ करोगे, तो फिर अपने मनोबल और शारीरिक बलको कैसे बढ़ा सकोगे? अपने दोषोंको दयालुतासे देखोगे, तो असुख प्राप्त करोगे। जो मनुष्य देरतक बिछौनेपर लेटे रहते हैं, वे कभी उज्ज्वल, हर्षित और हृष्टपुष्ट नहीं रहते; बल्कि वे सदैव चिड़चिड़े, आलसी, दुर्बल, क्षीण, विक्षिप्त और असुखी स्वभावके शिकार बनते हैं। वे दैनिक कर्त्तव्योंमें जो ढीलापन रखते हैं, उसके कारण ही उनको यह भारी मूल्य देना पड़ता है।

परन्तु जैसे शराबी प्रतिदिन मदिरा पीता है, तो वह इस विश्वाससे पीता है कि इससे मेरा शरीर पुष्ट रहेगा, यद्यपि यथार्थमें उसका शरीर बिगड़ता जाता है। इसी प्रकार आलसी अपने शरीरको

बाहरी आराम पहुँचानेमें ऐसा कुछ लगा हुआ रहता है कि उसको विश्वास हो जाता है कि उदासीनता, दुर्बलता और अस्वस्थताके दूर करनेके लिए मुझे चिरकाल तक आराम लेना चाहिए। यथार्थमें देखा जाय तो वे सब दैहिक गड़बड़ें अधिक आराम लेनेहीसे उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकारके असत्य आत्म-लालनसे मनुष्य कितनी भारी हानियाँ उठाते हैं, उनसे वे बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। मन और शारीरिक शक्तिकी हानि, वैभव, ज्ञान और सुखकी हानि वे इसी आत्म-क्षमाके कारण उठाते हैं।

दिनको बहुत सवेरे उठकर आरम्भ करना चाहिए। यदि शीघ्र उठनेसे कोई विशेष प्रयोजन न हो, तो भी शीघ्र उठना चाहिए। शीघ्र उठकर बाहर टहलने फिरनेको चले जाओ और प्रकृतिके सौन्दर्यको देखो। ऐसा करनेसे तुम्हें शक्ति, तेजी, ताजगी, हर्ष और शान्तिका ऐसा अच्छा अनुभव होगा कि तुम्हारे शीघ्र उठनेके परिश्रमका पारितोषिक तुम्हें अवश्य मिल जायगा। एक प्रयत्न अच्छा करनेसे दूसरा प्रयत्न भी अच्छा होता है। जब मनुष्य शीघ्र उठकर दिनको आरम्भ कर देता है, तब भले ही उसके करनेके लिए कोई विशेष कार्य न हो, उसका मन स्वच्छ और विचार शान्त हो जाते हैं। धीरे धीरे वह विचारशील हो जाता है और जीवन, जीवनके प्रश्नों, और स्वयंको तथा स्वकर्तव्योंको स्वच्छतर प्रकाशसे देखने लगता है। इससे उसको अभ्यास हो जाता है और सवेरे वह इसी प्रयोजनसे शीघ्र उठने लगता है कि प्रत्येक कठिनताको विवेक और शान्त बलसे दूर करनेके लिए अपने मस्तिष्कको सुघटित और सुसज्जित कर ले।

प्रातःकालकी घड़ीमें एक प्रकारकी दैवी शक्ति, पवित्र मौन और

अप्रकाशित शान्ति होती है। वह कार्यार्थी और सबल मनुष्य जो आरामके चद्दरको फैंककर उगते हुए सूर्यके दर्शनार्थ पर्वतपर जायगा, आनन्द और सत्यके बहुत उन्नत पर्वतपर भी चढ़ जायगा। प्रातःकाल ठीक समयपर कार्यारम्भ करनेसे भोजन करनेमें भी प्रसन्नता रहेगी और सम्पूर्ण दिनके कर्त्तव्य कार्य सुप्रकार होंगे और इस प्रकार तुम्हारा दिन सफल होगा।

एक प्रकारसे देखा जाय तो प्रत्येक नवीन दिन एक नवीन जीवनका आरम्भ है जिसमें मनुष्य नये विचार और कार्य नूतन विवेक और उत्साहसे कर सकता है।

प्रत्येक दिन एक नया आरम्भ है।

प्रतिदिन सवेरे संसार नवीन होता है।

तुम, जो दुःख और पापसे थक गये हो, अपना जीवन बदलनेके लिए अपने लिए और हमारे लिए एक सुन्दर आशा कर सकते हो।

व्यतीत 'कल' के पापों और भूलोंपर इतना अधिक विचार मत करो कि जिससे आजके दिनके कार्य करनेके लिए भी मन और शक्ति अवशिष्ट न रह जाय। इस विचारको भी मत करो कि कल पाप कर लिया, तो तुम आज पुण्य नहीं कर सकते हो। व्यतीत कलके अनुभवसे आजका दिन बिलकुल नई प्रणालीसे आरम्भ करो और पूर्वकी अपेक्षा आज भले प्रकार कार्य करनेका उद्योग करो। यदि तुम आरम्भ ही अच्छी तरह नही कर सकोगे, तो कार्य भी अच्छी तरह नहीं कर सकोगे। दिन भरकी सफलता प्रातःकालके अच्छे आरम्भपर अवलम्बित है।

दूसरे प्रकारका आरम्भ जो बहुत महत्त्वका है किसी विशेष और विशाल कार्यका आरम्भ करना है। मनुष्य जब घर बनाता है, तब उसका आरम्भ किस प्रकार करता है? जो मकान बनाना है उसका पहले नकशा बनाया जाता है। तदनन्तर नींव रखनेसे लेकर सम्पूर्णता तक नकशेके प्रत्येक अङ्गका अनुकरण किया जाता है। यदि आरम्भमें मकानका नकशा न बनाया जावे, तो परिश्रम निष्फल जायगा और मकान प्रथम तो टूटे फूटे विना सम्पूर्णताको पहुँचेगा ही नहीं और पहुँचेगा भी तो वह कमज़ोर और निकम्मा बनेगा। यही नियम प्रत्येक बड़े कार्यका है। किसी भी महत्कार्यका प्रथम नियम और उचित आरम्भ यह है कि उसको जैसा बनाना हो उसका परिमित ढाँचा अपने मनमें बना लेना चाहिए। प्रकृति माता रद्दी और डावाँडोल कार्यको पसन्द नहीं करती। प्रकृति गड़बड़ाहटकी शत्रु है; बल्कि ऐसा कहना उचित है कि गड़बड़ाहट और नाश एक ही वस्तुके दो नाम हैं। सुढंग, परिमितता और उद्देश्य सदा और सर्वदा स्थिर रहते हैं। वह मनुष्य जो अपने कार्योंमें इन तत्त्वोंको भूलता है, वह यथार्थता सम्पूर्णता, और सफलतासे हाथ धो लेता है।

विना ढंगका जीवन जिस घड़ी उत्पन्न हुआ उसी घड़ीसे व्यर्थ है। उस जीवनमें केवल असन्तोष उत्पन्न होता है और वह जीवन आधा भी समाप्त नहीं होता है कि उसके पूर्व एक प्रकारकी गड़बड़ और झंझट होने लगती है।

यदि मनुष्य किसी भी कार्यको अपने मनमें उसका पूरा ढाँचा बनाये बिना आरम्भ करेगा, तो वह अपने प्रयत्नोंको अटकलपच्चू करेगा और सिद्धि नहीं पा सकेगा। जो नियम मकान बनानेके काममें आते हैं वही अन्य कार्योंमें भी प्रयोजित होते हैं। अच्छा नकशा

बनानेसे उसकी साधनाके लिए प्रयत्न भी अच्छे ढंगसे होंगे और ऐसा होनेसे कार्य सम्पूर्णता, सफलता और आनन्दके साथ सम्पादित होगा।

केवल व्यापार और कारीगरी (शिल्पादि) के कार्योंमें ही नही, बल्कि सर्व प्रकारके कार्योंमें यही नियम लगते हैं। लेखकके पुस्तक रचनेमें, चित्रकारके चित्र बनानेमें, वक्ताके व्याख्यान देनेमें, सुधारकके सुधार करनेमें, आविष्कारके गवेषणमें, सेनापतिके संग्राम करनेमें—इन सभी कार्योंमें, आरम्भके पूर्व, जिस प्रकार कार्य करना हो उसका नकशा, मस्तिष्कमें सावधानीके साथ रच लेना पड़ता है। जैसी पूर्वकल्पित नकशेकी एकता, सुदृढता और पूर्णता होगी वैसी ही अन्तमें उस कार्यकी सिद्धि होगी।

कार्यकुशल, प्रभावशाली, और भले मनुष्य वे ही हैं जिन्होंने अन्य प्रकारके ज्ञान-सम्पादनके साथ साथ उन धुँधले और गूढ आरम्भोंके गुप्त महत्त्वको समझ लिया है और काममें लाना सीख लिया है जिनको मूर्ख जन तुच्छ समझकर छोड़ देते हैं।

परन्तु सर्वोपरि और महत् आरम्भ—जिसपर दु ख या आनन्द नितान्त अवलम्बित है और जिसको मनुष्य बिलकुल भूले हुए तथा बहुत कम समझे हुए हैं—गुप्त किन्तु कारणज्ञाता मनमें विचारोंका उत्पन्न होना है। तुम्हारा समस्त जीवन उन कारणोंके फलोंकी श्रेणी है, जो तुम्हारे मनमे उत्पन्न होते ह। मनुष्यका समस्त चरित्र उसके विचारोंसे बनता है। समस्त कार्य अच्छे या बुरे विचारोंके चित्र हैं जो पहले मनमें आच्छादित रहते हैं और फिर दृष्टिगत होते हैं। भूमिमें डाला हुआ बीज किसी वृक्षका आरम्भ है। बीज उगता है और वृक्ष प्रकाशमें आकर बढ़ने लगता है। इसी प्रकार मस्तिष्कमें

आया हुआ विचार मनुष्यके चरितका आरम्भ है । विचार अपनी जड़ें मस्तिष्कमें जमाता है और फिर उनको प्रकाशकी ओर कार्य और चरितके रूपमें ढकेलता है जिससे स्वभाव और भाग्य संघटित होते हैं।

घृणित, क्रोधान्वित, ईर्ष्यापूर्ण, लोभप्रचुर और अपवित्र विचारोंका उत्पादन अनुचित आरम्भ है, जिससे दु.खदायक फल मिलते हैं। प्रेमप्रचुर, नम्र, दयालु, स्वार्थशून्य और पवित्र विचारोंका उत्पादन उचित आरम्भ है जिससे आनन्ददायक फल मिलते है । यह नियम बहुत शुद्ध, सीधा और सत्य है। परन्तु मनुष्य इसको अक्सर भूल जाते और तुच्छ समझते है ।

वह माली—जो जानता है कि सावधानीक साथ कैसे, कब और कहाँ बीज बोया जाय—उत्तम फल प्राप्त करता और वृक्षविद्याका अधिकतर ज्ञान सम्पादन करता है। जो उत्तम आरम्भ करता है, उसकी आत्मा उत्तम फसलसे आनन्दित होती हैं। जो मनुष्य शक्तिमान्, उपयोगी और पुण्यमय विचारोंके बीज अपने मस्तिष्कमें सुप्रकार बोनेकी रीतिका ध्यानपूर्वक अध्ययन करता है, वह जीवनमें सर्वोत्तम फल प्राप्त करता और सत्यका अधिकतर ज्ञान संकलित करता है। सर्वोत्तम आनन्द उसीको प्राप्त होता है, जो अपने मस्तिष्कमें पवित्र और उच्च विचार प्रविष्ट करता है।

शुद्ध विचारोंसे शुद्ध और सत्य कार्य उत्पन्न होते हैं, सत्य-कार्योंसे शुद्ध जीवन लब्ध होता है और शुद्ध जीवनसे सर्वानन्द प्राप्त होता है ।

जो मनुष्य अपने विचारोंकी बनावट और उद्देश्यकी ओर ध्यान देता है और दूषित विचारोंको बाहर निकालकर उनके स्थानमें सद्वि-चारोंको धारण करनेकी प्रतिदिन चेष्टा करता है, वह अन्तमें इस ज्ञानको प्राप्त कर लेता है कि उन परिणामों और फलोंके आरम्भ—

जिनका उसके अस्तित्वकी प्रत्येक नसपर प्रभाव पड़ता है और जिनपर उसके जीवनका प्रत्येक कार्य अवलम्बित रहता है—उसके विचार ही हैं। जब वह इस प्रकारकी दिव्यदृष्टि प्राप्त कर लेता है, तब केवल सत्य विचार रखने लग जाता है जिनसे शान्ति और आनन्द प्राप्त होते हैं।

दूषित विचार उत्पन्न होते समय, वृद्धिगत होते समय, और परिणत होते समय भी क्लेशदायक होते हैं। परन्तु शुद्ध विचारोंके उत्पादन, वृद्धिगत, और परिणत होनेमें आनन्द मिलता है।

बुद्धिमत्ता प्राप्त करनेवाले मनुष्यको बहुतसे शुद्ध और सत्य आरम्भ ढूँढ़ने और करने चाहिए। उन सत्य और शुद्ध आरम्भोंमें सर्वोत्तम और सर्वव्यापक आरम्भ, जो सकल सुखोंकी जड़ है, मानसिक शक्तियोंका शुद्ध और उचित संचालन है, अर्थात् आत्मदमन, मनोबल, दृढ़ता, शक्ति, पवित्रता, विनय, विवेक और ज्ञानका शनै. शनैः बढ़ाना है। इससे जीवन परिपूर्णताको पहुँचता है, क्योंकि जो परिपक्वताके साथ विचार करता है वह समस्त असुखको दूर कर देता है। ऐसे मनुष्यका प्रत्येक क्षण शान्तिमय है, उसके वर्ष सुखपूर्ण हैं और वह पूर्णानन्दको प्राप्त कर लेता है।

२–साधारण कार्य और कर्त्तव्य ।

हमारे कर्त्तव्यके पास वह कुजी है जो हमारे लिए स्वर्गके द्वारका ताला खोलेगी । न शीघ्रतासे और न विलम्बसे, बल्कि यथोचित समयपर जो मनुष्य पहुँचेगा, वही स्वर्गीय दृश्यको देख सकेगा ।

उस तारेकी नाई जो दूरपर चमकता है प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह अपने दैनिक कर्त्तव्यकी दृढताके साथ परिक्रमा करे ।

—गेटे ।

जैसे उचित आरम्भसे सुख और अनुचित आरम्भसे दुख मिलता है, उसी प्रकार साधारण कार्यों और कर्त्तव्योंसे क्लेश और आनन्द प्राप्त होते हैं। यह बात नहीं है कि स्वयं कर्त्तव्य-पालनमें ऐसी कोई शक्ति है कि जो मनुष्यको सुख या दुःखका उपहार देती है; किन्तु सुख और दुःख देनेवाला तो मनका वह भाव है जिससे कर्त्तव्य-पालन किया जाता है। जिस भावसे हम कर्त्तव्य-परायणताको पहुँचते और कर्त्तव्य-पालक बनते हैं, उसीपर प्रत्येक कार्य अवलम्बित है। क्षुद्र कार्योंको निःस्वार्थ विवेक और पूर्णतासे करनेमें बहुत बड़ा सुख ही नहीं मिलता है किन्तु बड़ी भारी शक्ति भी प्राप्त होती है। क्योंकि जैसे बूँद बूँदसे घड़ा भरता है, वैसे ही जीवन भी छोटे छोटे कार्योंसे सम्पूर्ण होता है। जीवनके साधारण दैनिक कार्योंमें विवेक अन्तर्व्याप्त है और जब

किसी वस्तुके भिन्न भिन्न भाग सम्पूर्ण होते है, तो वह समस्त वस्तु भी अवश्य सम्पूर्ण होती है।

संसारकी प्रत्येक वस्तु छोटे छोटे परमाणुओंसे बनी हुई है और छोटी छोटी वस्तुओंकी सम्पूर्णतापर बड़ी बड़ी वस्तुओंकी सम्पूर्णता अवलम्बित है। यदि सृष्टिके किसी विशेष अङ्गकी बनावटमें कच्चापन है, तो सम्पूर्ण सृष्टिमें भी न्यूनता रहेगी। यदि किसी वस्तुका कोई परमाणु निकाल दिया जाय, तो उस वस्तुका स्थिर रहना कठिन हो जायगा। बालू (मिट्टी) के कणोंके विना पृथ्वी नहीं बनती और मिट्टीका नन्हासा कण सम्पूण है, तो पृथ्वी भी सम्पूर्ण है। क्षुद्रकार्यको भूल जानेसे महत् कार्यमें भी गड़बड़ रहती है। हिमका फेन उतना ही सम्पूर्ण है, जितना एक नभोमंडलका तारा। ओसका एक बिन्दु उतना ही सुडौल और सुरचित है, जितना भूगोल।

एक सूक्ष्म कृमि उतने ही हिसाब-किताबसे बनाया गया है, जितनेसे एक मनुष्य। पत्थरपर पत्थर रखनेसे और उनको सहावलके द्वारा ठीक जमानेसे अन्तमें सुन्दर मन्दिर खड़ा कर दिया जाता है। छोटेहीसे बड़ा होता है। छोटा बड़ेका अनुचर नहीं है बल्कि उसको ज्ञान करानेवाला विवेक और स्वामी है।

घमंडी और लालची मनुष्य महत्त्व प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छासे बड़े कार्योंको करनेकी खोज करते हैं और उन छोटे छोटे कार्योंको—टालते हैं और उनको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं—जिनको शीघ्रतासे करना आवश्यक है परन्तु जिनके करनेमें मिथ्या प्रशंसा नहीं मिलती और जिनको तुच्छ समझकर करना वह अपना मन्तव्य और पुरुषार्थ नहीं समझते। मूर्खमें नम्रता नही होती, इसलिए उसमें ज्ञान भी

नहीं होता और अहंकारसे फूला हुआ वह असम्भव कार्योंको करनेका प्रयत्न करता है।

महत्पुरुष छोटे छोटे कार्योंको सन्देहरहित और स्वार्थशून्य भावसे करता हुआ, जिनमें उसको कोई प्रशंसा, उपहार या पुरस्कार नहीं मिलता, घमंड और लालचको मारकर, ज्ञानवान् और शक्तिमान् बनता है। महत्पुरुष महत्त्वको नहीं खोजता बल्कि भक्ति, नि:स्वार्थता, और सत्यको खोजता है। वह लोकव्यवहारके इन्ही साधारण और अल्प कार्यों तथा कर्त्तव्योंको करता हुआ उपर्युक्त गुणोंको प्राप्त करके महत्ताके शिखरपर स्वतः ही चढ़ जाता है। बड़ाईके लिए बड़े काम करनेकी आवश्यकता नही है, बल्कि इन ही सासारिक सर्वसाधारण कर्त्तव्योंको दिन प्रति दिन ईमानदारी, स्वार्थशून्यता और सत्यके साथ करनेसे बड़ाई अपने आप आ जाती है।

प्रत्येक क्षण, प्रत्येक शब्द, स्वागत, भोजन, वस्त्र, पत्रव्यवहार, विश्राम, कार्य, प्रयत्न, कृतज्ञता इत्यादि छोटी छोटी सहस्रों बातोंको महत्पुरुष बड़ी समझता है। वह प्रत्येक कार्यको दैवका नियमित किया हुआ समझता है और अपना केवल यह कर्त्तव्य समझता है कि उस कार्यको शान्त विचारसे करूँ कि जिससे जीवन सुखी और सम्पूर्ण बने। महत्पुरुष न तो भूल करता है और न शीघ्रता करता है। वह गल्तियों और मूर्खताओंसे बचनेकी चेष्टा करता है। अपने सम्मुख उपस्थित हुए कार्यको, चाहे वह लघु हो या महान्, वह ध्यानसे करता है। न उसको आगेके लिए टालता है और न उसके सम्पादनके हेतु-पर खेद करता है। वह हर्ष और खेदको भूलकर अपनेको कर्त्तव्यमें रत कर देता है और उस बाल-सरलता और नैसर्गिक शक्तिको प्राप्त कर लेता है जिसको महत्त्व कहते हैं।

कन्फ्यूशियसका यह उपदेश है कि "अपने घरमें उसी प्रकार और वैसे ही हर्षसे भोजन करो जैसे किसी राजाके घरपर करते हो।" यह उपदेश छोटी बातोंके महत्त्वको बताता है। बुद्ध भगवान् भी कहते हैं कि "यदि किसी कामको करना है तो चाहे वह कितना ही छोटा हो उसपर प्रबलतासे आक्रमण करना चाहिए।" छोटे छोटे कार्योंको भूलना या उनको आलस्यके साथ और बिना मनके करना दुर्बलता और मूर्खताका लक्षण है।

प्रत्येक कार्यको निस्स्वार्थता और ध्यानसे करनेसे प्रकृतिके नियमानुसार मनुष्यके कर्त्तव्य बहुत बढ़ जाते हैं और उसकी कर्त्तव्यपालनकी शक्ति भी उच्च कोटिकी हो जाती है; क्योंकि कर्तव्यपालनसे बलकी वृद्धि होती है और बुद्धि, सुमनस्कता और चरितपरिपकताको पहुँचते हैं। जैसे वृक्षमें स्वतः ही प्रकृतिके धर्म्मानुसार पुष्प निकल आते हैं, उसी प्रकार मनुष्य कर्त्तव्यपरायणतासे स्वतः ही महत्ताको प्राप्त होता है और लगातार शक्ति और परिश्रमके साथ प्रत्येक प्रयत्नको उचित स्थान और समयपर करता हुआ अपने जीवन और चरितको सुन्दर बना लेता है।

'इच्छाशक्ति' (मनोबल) और 'मानसिक ध्यान' की वृद्धिके लिए संसारमें जितने प्रचलित उपाय हैं, वे अनुभवकी दृष्टिसे देखनेपर निरर्थक प्रतीत होते हैं। प्राणायाम, आसन, नेत्र-प्रहार, तन्त्र-मन्त्र, ये सब प्रयोग जितने ही बनावटी और असत्य हैं उतने ही भ्रम-मूलक भी हैं। परन्तु उस सत्यमार्गको—उस दैनिक कर्त्तव्यपालनके मार्गको—जिसपर चलनेसे 'इच्छाशक्ति' और मानसिक बल सुप्रकार बढ़ सकते हैं—अच्छे अच्छे मनुष्य भी भूले हुए हैं और उसपर नहीं चलते हैं।

शक्ति या प्रभुत्व प्राप्त करनेके हेतु अस्वाभाविक कष्ट और काम करना परित्याग कर देना चाहिए । बचपनसे युवावस्था, मूर्खतासे विवेक, अज्ञानतासे ज्ञान, और दुर्बलतासे बल, ये सब धीरे धीरे प्राप्त होते हैं । मनुष्यको चाहिए कि विचारपर विचार, प्रयत्नपर प्रयत्न और कार्यपर कार्य करके दिन-प्रति-दिन धीरे धीरे आगे बढ़ना सीखे।

यह सत्य है कि साधु समाधि, आसन इत्यादिसे अपने शरीरको पीडित करके किसी श्रेणी तक शक्ति प्राप्त कर लेता है; परन्तु इस शक्तिको वह बहुत भारी मूल्य देकर (अर्थात् शारीरिक बलकी आहुति देकर) प्राप्त करता है और ऐसा करनेसे जैसे उसको मानसिक शक्तिका लाभ होता है, वैसे शारीरिक शक्तिकी हानि होती है । वह साधु किसी आध्यात्मिक ज्ञानका विशेष ज्ञाता भले ही हो जावे परन्तु अपने देहबल और उपयोगी स्वभावको खो देता है । वह सम्पूर्ण मनुष्य नहीं बनता किन्तु सदैव अपूर्ण रहता है । चिड़चिड़ापन, मूर्खता, उतावलापन, व्यभिचारादिको—जो मनुष्यके दैनिक जीवनके साथी हैं और जो थोड़ासा अवसर पाते ही शरीरमें उत्पन्न होते हैं—जीतना और सांसारिक कर्त्तव्योंकी धूप और भारमें, विह्वल और अस्वस्थ मनुष्योंकी भीड़में, शान्ति, आत्मदमन और धृतिको परिपक्व करना ही सच्ची आत्मशक्ति है । इससे न्यून हम किसी भी वस्तुको सच्ची शक्ति नहीं कह सकते । दैनिक कार्य, कर्त्तव्य और उपकारोंको अधिकसे अधिकतर सुन्दर उपाय, निस्स्वार्थता और सम्पूर्णताके साथ करनेसे आत्मशक्ति शनैः शनैः स्वतःही बढ़ती चली जाती है ।

सच्चा गुरु वह नहीं है, जो गुप्त और आश्चर्ययुक्त आध्यात्मिक ज्ञान रखते हुए भी कई वार असावधानीसे चिड़चिड़ेपन, खेद, मूर्खता या

किसी प्रकारके दुर्व्यसनका आखेट वन जाता है, किन्तु सत्य गुरु वही है जो अपने महत्त्वको साहस, रोषशून्यता, दृढ़ता, शान्ति और असीम धैर्यके द्वारा दिखाता है। जो अपनी आत्मापर प्रभुत्त्व रखता है, वही सच्चा प्रभुत्वशाली है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह प्रभुत्व नहीं किन्तु धोखा है।

मनुष्यको चाहिए कि जब उसके सम्मुख कोई कार्य उपस्थित हो, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, उसको पूरे मन, बुद्धि और ध्यानसे करे। उस कामके अतिरिक्त अपने मास्तिष्कमें और किसी भी विचारको न घुसने दे और अपने कामके वदलेमें किसी उपहारकी प्रतीक्षा न करे। ऐसा करनेसे वह अपने मनपर अधिकसे अधिकतर अधिकार जमाता जायगा और इस प्रकार उन्नत होता हुआ वह अन्तमें अत्यन्त शक्तिमान् वन जायगा।

सम्मुखोपस्थित कार्यमें अपनेको इस प्रकार दृढतासे लगाओ और उसे ऐसे दत्तचित्त होकर करो कि वह सम्पूर्ण और सिद्ध हो जाय। आत्मशक्ति, ध्यान और पौरुषकी वृद्धिका सत्यमार्ग यही है। तन्त्र मन्त्र इत्यादि कृत्रिम उपायोंको मत खोजो। उन्नति प्राप्त करनेका प्रत्येक उपाय तुम्हारे ही साथ और तुम्हारे ही हृदयमें है। तुम्हें तो केवल इस बातको सीखना है कि जिस स्थितिमें तुम हो, उसीमें अपने आपको खूब लगा दो। जबतक तुम ऐसा नहीं करोगे तबतक सुष्ठुतरा स्थितियाँ जो तुम्हारे लिए बाट जोह रही हैं तुम्हें नहीं मिल सकतीं।

प्रत्येक क्षणमें बल और बुद्धिसे काम करनेसे ही बल और बुद्धिकी प्राप्ति होती है और क्षणक्षणमें पृथक् पृथक् कार्य करनेको मिलते हैं। शक्तिमान् और धीमान् जन वही है जो क्षुद्र कार्योंको महत्कार्योंकी नाईं करता है और किसी भी बातको तुच्छ नहीं समझता। परन्तु

दुर्वल और मूर्ख जन छोटे कार्योंको असावधानी और ओछेपनसे करता है और वड़े काम करनेके लिए लालायित रहता है । वह यह नहीं जानता कि मैं क्षुद्र कार्योंको असावधानी और अयोग्यताके साथ करके संसारके समक्ष अपनी अयोग्यता प्रकट कर रहा हूँ। जो मनुष्य अपने ऊपर अधिकार नहीं रखता, वह दूसरोंपर अधिकार करने और वड़ी जिम्मेवारियोंको अंगीकृत करनेको वहुत ललचाया रहता है। किसीका कथन है कि " जो मनुष्य अपने कर्त्तव्यको तुच्छ समझकर उसका पालन नहीं करता है, वह अपने आपको धोखा देता है। तुच्छ समझ-कर क्षुद्र कर्त्तव्यका न करना छोटी वात नहीं है, किन्तु वड़ी वात है। "

जैसे कार्यको शक्तिके साथ करनेसे और भी अधिक शक्ति प्राप्त होती है, वैसे ही कार्यको दुर्वलताके साथ करनेसे दुर्वलता वढ़ती है। मनुष्य जैसे छोटे कार्योंको करता है, वैसे ही वड़े कार्योंको भी करता है। दुर्वलतासे उतना ही कष्ट उत्पन्न होता है जितना पापसे। मनुष्यमें जवतक थोड़ी वहुत चरित्रशक्ति न हो, तवतक उसको यथार्थ आनन्द नहीं मिल सकता। दुर्वल जन छोटी छोटी वातोंको महत्त्वकी समझकर करे, तो वलवान् हो सकता है और सुशक्त मनुष्य अपने छोटे छोटे कार्योंको असावधानी और ढीलेपनसे करे, तो अपने साधारण विवेक और पौरुपको भ्रष्ट करके अशक्त हो जाता है। निम्नलिखित शब्दोंमें उन्नतिका जो नियम वर्णित किया गया है वह उपर्युक्त वातोंको प्रमा-णित और सिद्ध करता है—" वल जिसमें पहलेसे है उसीको मिलेगा और जिसमें पहलेहीसे नहीं है उसका जो थोड़ा वहुत है सो भी छिन जायगा। "

मनुष्य जैसा जैसा विचार करता, जैसा जैसा करता और कहता है, वैसा ही उसको हानि-लाभ मिलता है। मनुष्यका चरित क्षणक्षणमें घटता बढ़ता रहता है; किसी क्षणमें भलाईका कुछ अंश बढ़ जाता है और किसी क्षणमें न्यून हो जाता है। अर्थात् जिस क्षणमें जैसा उसका मन वचन और कर्म्म होता है, वैसा ही उसका चरित बढ़िया या घटिया होता है और वैसा ही उसको हानि या लाभ प्राप्त होता है।

जो लघुपर अधिकार जमा लेता है, वह गुरुपर भी न्यायसंगत अधिकार कर लेता है। परन्तु जो स्वयं लघुके वशीभूत हो जाता है, वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

मूर्ख देखता है कि क्षुद्र दोष, क्षुद्र अत्याचार और क्षुद्र पाप महत्त्व नही रखते और वे क्षमा कर दिये जाते है। वह अपनेको भुलावा देता है कि मै जबतक कोई उत्कट पाप या व्यभिचार न करूँ तबतक पुण्यात्मा हूँ। परन्तु ऐसा विचारनेसे उसका जो थोड़ा बहुत पुण्य होता है, सो भी नष्ट हो जाता है और वह दुराचारी मान लिया जात्ता है। फिर लोग न उसका मान करते, न उसको प्यार करते, न किसी कामका समझते और न उसका कोई प्रभाव रहता है। इस प्रकार अध.पतनको प्राप्त हुआ मनुष्य यदि समाजको सुधारनेकी चेष्टा करे, अपने सहचारियोंको पापसे बचनेका उपदेश करे, तो उसकी चेष्टा और उपदेश निष्फल और व्यर्थ हैं। जितना वह अपने क्षुद्र दोषोंको तुच्छ समझता है, उतना ही तुच्छ उसका चरित और मनुष्यत्व है। जिस मनमानी स्वतन्त्रतासे वह दोष करता और अपनी दुर्बलताको प्रकाशित करता है, वही मनमानी स्वतन्त्रता असावधानी और मानहानिमें रूपान्तरित होकर उसको वापस मिलती है। उसको कोई नही पूछता, क्यों कि बुराई सिखानेवालेको कौन पूछे? उसका

कार्य सम्पन्न नहीं होता, क्योंकि दुर्बलताका सहारा कौन ले? उसका उपदेश कोई नहीं सुनता, क्योंकि वह अभ्यास, विवेक और अनुभवसे शून्य होता है। कोई गूँजके पीछे थोड़ा ही दौड़ता है।

वह मनुष्य जो बुद्धिमान् है या बुद्धिमान् बन रहा है, उस भयको देखता है जो उन साधारण दोषोंमें अन्तर्व्याप्त रहता है जिनको लोग असावधानीसे करते हैं और कुछ दण्ड नहीं पाते। वह उस मुक्तिको भी देखता और पहिचानता है जो उन दोषोंके त्यागने और पवित्र विचार तथा कार्य करनेसे प्राप्त होती है; परन्तु जिसको बहुतेरे लोग तुच्छ समझते हैं। वह उस शान्त और आन्तरिक आत्म-दमनको भी पहिचानता है जो दैनिक कार्योंमें करना पड़ता है, परन्तु जिसको मनुष्य बहुधा अपनी दृष्टिमें नहीं लाते।

जो मनुष्य अपने छोटेसे छोटे दोष और पापको बड़ा और भयंकर समझता है, वह महात्मा और साधु हो जाता है। उसके प्रत्येक विचार और कार्यमें जो विस्तारयुक्त प्रभाव उत्पन्न होता है, उसको वह देखता और पहिचानता है। वह अपने चरितकी उन छोटे छोटे अंशोंकी सम्पूर्णता या न्यूनताको—जिनसे उसका जीवन रचा जाता है और जिनसे वह बिगड़ता या अच्छा बनता है—बड़ी सावधानीसे देखता है। इसी हेतु वह अपनी देख-रेख करके अपनेको थोड़ा थोड़ा और धीरे धीरे पवित्र और सम्पूर्ण बनाता जाता है।

जैसे समुद्र बिन्दुओंसे, पृथ्वी कणोंसे और तारे प्रकाशकी नोकोंसे बने हुए हैं, उसी प्रकार जीवन छोटे छोटे विचारों और कार्योंसे बना हुआ है। बिना इनके जीवन स्थित नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य या जीवन जैसे उसके पृथक् पृथक् विचार और कार्य होते हैं, वैसा

ही होता है। उन्हीं विचारों और कार्योंका संगठन वह मनुष्य है। जैसे वर्ष गिने हुए क्रमबद्ध क्षणोंका समूह है, उसी प्रकार मनुष्य-जीवन और चरित क्रमबद्ध विचारों और कार्योंका समूह और संगठन है और जैसे जैसे इसके पृथक् पृथक् अंग या भाग होंगे, उसी प्रकारका यह समस्त और समूचा होगा।

वर्ष सब ऋतुओंका बना हुआ है और भूमंडल सर्व प्रकारके पदार्थोंका समूह है।

छोटे छोटे उपकारों, उदारताओं और आत्मसमर्पणोंसे दयालु और उपकारी स्वभाव बनता है। छोटे छोटे आत्मोत्सर्गों, सहनशीलताओं और आत्मविजयोंसे मनुष्य शक्तिमान् और उन्नतचरित बनता है। वास्तविक खरा मनुष्य वही है, जो जीवनके छोटे छोटे व्यवहारोंमें खरापन रखता है। सुयोग्य जन वह है जो अपने तुच्छसे तुच्छ वचन और कार्योंमें भी सुयोग्यता दिखाता है।

मनुष्य धोखा खाते और समझते हैं कि जीवन क्षणिक विचारों और कार्योंसे भिन्न और पृथक् है। वे यह नहीं समझते कि तनिक तनिकसे विचार और कार्य जीवनकी जड़ और सार हैं। जब यह सिद्धान्त समझमें आ जाता है, तो सब वस्तुएँ पवित्र दिखाई देने लगती हैं और सब कार्य और कर्तव्य धर्म्मयुक्त ज्ञात होने लगते हैं। छोटे छोटे व्यवहारोंमें सत्य लिपटा हुआ रहता है। सम्पूर्णता ही निपुणता है।

" अधिकार और प्राप्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, अनुमतियाँ बदल जाती हैं और मनके उद्वेग परिवर्त्तनशील हैं। परन्तु कर्त्तव्य न असित होता, न घटता और न अच्छी या बुरी घटनाओंके तूफा-नसे हिलता है। "

जीवनके भाग क्रमशः व्यतीत होते हैं, समस्त जीवन एक साथ व्यतीत नहीं होता। यदि तुम चाहो तो प्रत्येक भागको योग्यतासे सम्पूर्ण कर सकते हो। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण जीवनमें कहीं भी त्रुटि नहीं रह सकती। यह कहावत प्रचलित है कि "यदि तुम पैसों-की चौकसी करोगे, तो रुपये अपनी चौकसी आप कर लेंगे।" यह कहावत केवल सासारिक व्यवहारमें ही युक्तियुक्त नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म संसारमें यह और भी अधिक उपयुक्त है। वर्त्तमानमें जो कार्य हो रहा है उसकी चौकसी यदि यह समझ कर की जावे कि इस कार्यसे जीवन और चरितका समस्त समूह ठीक होता है, तो यह तुम्हारी वड़ी सावधानी और निपुणता है। महती और प्रशंसनीय वातें करनेकी लालसा न करो। वर्त्तमानमें जो कार्य तुम्हारे सम्मुख है, यदि तुम उसको योग्यताके साथ करोगे, तो प्रशंसनीय वातें अपने आप सिद्ध हो जावेंगी। तुम्हारे आधुनिक कार्यमें जो रुकावटें और प्रतिवन्ध हैं, उनसे मत घवराओ, किन्तु निःस्वार्थताके साथ उसको किये जाओ। असन्तोष, आलस्य और महत्कार्योंके करनेके मूर्ख विचारको छोड़ो। ऐसा करनेसे वह महत्ता जिसके प्राप्त करनेके लिए तुम पुकार रहे थे स्वतः ही तुम्हारे निकट आ जायगी। चिड़चिड़ेपनके वरावर और कोई दुर्वलता नहीं है। आन्तरिक वड़प्पन प्राप्त करनेका उद्योग करो, न कि वाहरी प्रशंसा प्राप्त करनेका—,वह तो अपने आप आ जायगी।

कार्य करनेमें जो कठिनाइयाँ और कष्ट तुम्हें प्रतीत होते हैं, वे उस कार्यमें नहीं हैं किन्तु तुम्हारे मनमें हैं। यदि उस कार्यकी ओर तुम अपना मनोभाव वदल डालो, तो टेढ़ा मार्ग झटपट सीधा हो जायगा और असुख आनन्दमें परिणत हो जायगा।

तुम अपने प्रत्येक क्षणको पवित्र और उपयोगी बनानेका उद्योग करो। प्रत्येक कार्य और कर्त्तव्यको अनुराग और निःस्वार्थतासे करो। प्रत्येक विचार, वचन और कार्यको मधुर और सत्य बनाओ। इस प्रकार तुम अपने जीवनकी तुच्छसे तुच्छतम बातोंकी अतुल्य महत्ताको अभ्यास और अनुभवसे सीखो और अत्यन्त तथा अनन्त आनन्दको प्राप्त करो।

३–कठिनाई और व्याकुलता।

जो मनुष्य बनना चाहे उसको चाहिए कि वह अपने हृदयपर अधिकार जमावे, लालसाओंको नष्ट करके उनपर अपना सिंहासन बनावे, आशा और भयके राजविद्रोहका दमन करे और स्वतन्त्रतामें अत्युनत राज्य भोगे।

—शेली।

क्या तुम निशाना चूक गये हो? चूक गये तो क्या हुआ, अब भी तो निशाना चमकता हुआ दिख रहा है। फिर प्रयत्न करो। क्या तुम दौडते दौडते गिर गये हो? थोडा श्वास ले लो और फिर दौडो।

—इला व्हीलर विलकाक्स।

यह कहना कि संकट और व्याकुलतासे भी बहुत कुछ आनंद मिलता है, लोगोंको बहुधा असंगत प्रतीत होगा। परन्तु यह कहना बिलकुल यथार्थ है। सत्य बाहरसे असत्य दिखाई देता है। मूर्खोंकी समझसे जो दुःख हैं धीमानोंकी समझमें वे सुख हैं। संकट पहले अज्ञान और दौर्बल्यसे उत्पन्न होते हैं और फिर ज्ञान और शक्तिकी प्राप्ति कराते हैं।

सत्य जीवनसे जैसे जैसे ज्ञान प्राप्त होता जाता है वैसे वैसे ही कठिनाइयाँ घटती जाती हैं, और नाशमान् कोहरेकी नाईं झंझटें और अड़चनें क्रमशः हटती जाती हैं। संकट या कठिनाई कार्यमें

नहीं होती किन्तु जिस मनोभाव और पौरुषसे वह कार्य किया जाता है उसमें होती है। बालकको जो काम कठिन प्रतीत होता है, वह मनुष्यके परिपक्व मस्तिष्कको कठिन ज्ञात नहीं होता। इसी प्रकार अज्ञानीको जो बात कठिन लगती है, वह ज्ञानीको कठिन नहीं दिखती।

अशिक्षित और कच्चे बालकको एक सरल पाठ सीखनेमें भी कितनी भारी और दुर्दमनीय कठिनाई प्रतीत होती है। उसके पारंगत होनेमें उस बालकको बहुत समयतक कितनी चिन्ता और श्रम उठाना पड़ता है। कठिनाईकी उन्नत दीवारको फाँदनेके आशा-रहित विचारमें वह कितने अश्रु टपकाता है। परन्तु ध्यानसे देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि वह कठिनाई उस पाठमें नहीं, किन्तु उस बच्चेकी नासमझीमें है। उस कठिनाईका जीतना और सिद्ध करना ज्ञानकी वृद्धि और उस बच्चेके स्वास्थ्य, सुख और उपयोगिता-के हेतु बहुत ही आवश्यक है।

उपर्युक्त बालकके दृष्टान्तकी नाईं मनुष्यकी वृद्धि और उन्नतिके हेतु जीवनकी कठिनाइयोंको जीतना और उनके पारंगत होना आवश्यक है। जितनी कठिनाइयाँ जीती जाती हैं उतना ही अनुभव, ज्ञान और विवेक प्राप्त होता है। ऐसा करना एक नवीन पाठको पढ़ना और एक कार्यको सफलताके साथ करनेके सुखका प्राप्त करना है।

संकटका यथार्थ रूप क्या है? संकट उस स्थितिका नाम है जो सम्पूर्णतासे समझमें नहीं आती। इसलिए उसके दूर करनेके हेतु मनुष्यको अधिकतर ज्ञान और गम्भीरतरा बुद्धिका प्रयोग करना चाहिए। यह एक ऐसी आवश्यकता है जिसमें अनभ्यस्त पौरुष,

आन्तरिक वल और गुप्त शक्तिका प्रयोग करना चाहिए। अतः कठिनाई एक भेष वदला हुआ स्वर्गदूत है। कठिनाई मनुष्यका ऐसा मित्र और गुरु है कि उसकी शिक्षा यदि शान्तिसे सुनी जाय और यथोचित समझी जाय, तो वह महत्तर आनन्द और उच्चतर ज्ञानको प्राप्त कराती है।

कठिनाईके विना किसी प्रकारकी उन्नति, विस्तरण और परिवर्त्तन नहीं हो सकता। यदि प्रतिघात न होते, तो संसार एक ही जगह ठहर जाता और मनुष्यजाति थकान और आलस्यसे पीडित होकर नष्ट हो जाती।

जब कोई विघ्न सम्मुख उपस्थित हो तो मनुष्यको हर्ष करना चाहिए, क्योंकि विघ्न और कठिनाईके समुपस्थित होनेका अर्थ यह है कि मनुष्य मूर्खता और उदासीनताकी किसी विशेष श्रेणी तक पहुँच गया है और अब उसको उन रुकावटोंसे अपने आपको पृथक् करनेके हेतु और सुमार्ग ढूँढ़नेके लिए अपने विशेष पौरुष और बुद्धिको प्रयोजित करना पड़ेगा। ऐसा समझना चाहिए कि मानों अब उसकी आभ्यन्तरिक शक्तियाँ अधिकतर स्वतन्त्रता, अभ्यास और अवसरके लिए पुकारने लगी हैं।

कोई भी स्थिति स्वयं कोई कठिनाई नहीं है। उस स्थितिके आन्तरिक मर्मोंके समझनेकी और उसके साथ जो व्यवहार किया जाता है उसके समझनेकी न्यूनताका नाम कठिनाई, विघ्न, प्रतिघात या संकट है। इसलिए कठिनाईसे असंख्य लाभ होते हैं।

कठिनाइयाँ स्वेच्छित और अकस्मात् उत्पन्न नहीं होती हैं, उनके उत्पन्न होनेके कारण होते हैं। मानव-शरीरकी जैसे जैसे आवश्यकताएँ बढ़ती हैं, वैसे वैसे विस्तरण या विकाशके सिद्धान्त

(Law of Evolution) के अनुसार कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। बस, इसीमें उनका आनन्द है।

आचरणके ऐसे भी मार्ग हैं जो अवश्यमेव मनुष्यको विघ्नों और उलझनोंमें फँसाते हैं और ऐसे भी हैं जो इनसे मुक्त कराते हैं। मनुष्य अपने आपको चारों ओरसे चाहे जितना दृढ क्यों न जकड़ ले, वह स्वयं उस बंधनसे मुक्त हो सकता है। मनुष्य अज्ञानके कारण चाहे जैसे दु:खोंके दलदलमें और उलझनोंके चाहे जैसे मार्गशून्य जंगलमें भटकता हुआ चला जाय, वह अपना सत्य मार्ग ढूँढ़कर, आनन्द और विवेकयुक्त कार्यरूपी उज्ज्वल नगर-को जानेवाले सीधे और कंटकरहित पथपर वापस आ सकता है। परन्तु हाथ पैर फैलाकर बैठ रहने, हताश होकर रोने चिल्लाने, खेद करने और झींकनेसे वह ऐसा कदापि नहीं कर सकता। उसकी द्विधा केवल सचेतता, न्यायसंयुक्त चिन्तन और शान्त परीक्षासे मिट सकती है। उसकी पतित स्थितिको इस बातकी आवश्यकता है कि वह अपने आपपर अधिकार जमावे, अपने उचित स्थानपर वापस आनेके हेतु विचार करे, खोज करे और अनन्त तथा क्रमबद्ध परिश्रमके साथ कार्य करे। निरा सोच और विचार तो उस कठिनाईके परिमाणके धुँधलेपनको और भी बढ़ाना है। परन्तु यदि वह धैर्यके साथ अपने आपसे पूछेगा और जिस पेंचदार मार्गपर चलनेसे उसको यह दशा प्राप्त हुई है उसको विचारेगा, तो उसे ज्ञात हो जायगा कि उसने कहाँ कहाँ भूल की और वह कहाँ कहाँ राह बदलनेमें चूका। इस प्रकार सोच-नेसे वह यह भी जान जायगा कि यदि वह तनिकसी अधिक विचार-शीलता, बुद्धि, मितव्ययता या स्वार्थशून्यतासे काम करता, तो वह इस कठिनाई और क्लेशको प्राप्त ही नहीं होता। वह भलीभाँति देख-

सकेगा कि किस प्रकार धीरे धीरे उसने अपने आपको उलझनोंमें डाला और यदि यह अधिकतर ज्ञान और विवेकसे चलता, तो किसी और ही सन्मार्गमें प्रविष्ट होता। इस प्रकार चलकर यदि वह अपने व्यतीत चरित्रसे सुवर्णविवेकके अनुभवरूपी बहुमूल्य कणोंको बटोरे, तो उसके संकटोंका आकार बहुत कुछ घट जायगा। फिर वह अपने उद्वेगशून्य विचारके तीव्र प्रकाशको उन संकटोंकी परीक्षा करने, उनको सम्पूर्ण समझने और उनसे अपने अन्दरकी कार्य-बुद्धिके जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं उनको जाननेके लिए लगा देगा। ऐसे करनेसे संकट दूर होकर सीधा मार्ग दृष्टिगत हो जायगा और वह मनुष्य सदैवके लिए एक अच्छी शिक्षाका पाठ पा लेगा। इसके सिवाय उसको विवेकका कुछ ऐसा अंश और आनन्दका कुछ ऐसा परिणाम प्राप्त हो जायगा, जो उससे कभी पृथक् नहीं हो सकेगा। जैसे अज्ञान, स्वार्थता, मूर्खता और अन्धेपनके जो मार्ग हैं वे घबराहट और झंझटमें समाप्त होते ह, उसी प्रकार ज्ञान, आत्मत्याग और विवेकके भी मार्ग हैं, जो सुप्रसन्नता और शांतिमें परिणत होते हैं। जो इस सिद्धान्तको जानता है वह कठिनाइयोंका सामना साहसके साथ करेगा और उनको दमन कर दोषमेंसे गुण, दुःखमेंसे सुख और गड़बड़में शांति प्राप्त करेगा।

ऐसी कोई कठिनाई नही है जिसे मनुष्य शक्तिके साथ सामना करके न जीत सके। घबराहट निरर्थक ही नहीं है बल्कि मूर्खता भी है, क्यों कि वह कार्य करनेकी शक्ति और विवेकको हर लेती है। यदि यथोचित उपाय किया जाय तो प्रत्येक संकट दूर हो सकता है, इस लिए उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। जो कार्य पार नही पड़ता वह कठिन नहीं है किन्तु असम्भव है और फिर

उसके लिए चिंता करना बिल्कुल व्यर्थ है। क्यों कि असम्भवताको जीतनेका तो केवल एक यही उपाय है कि उसके अगाड़ी हार मान ली जावे। जैसे गैहिक, सामाजिक और आर्थिक संकट अज्ञानसे उत्पन्न होते हैं और उनके दमन करनेसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे ही धर्म्मविषयक संकट संदिग्धता, मानसिक व्याकुलता और हृदयमें अन्धेरा उत्पन्न करनेवाली छायासे उत्पन्न होते हैं और उनके दूर होनेसे आध्यात्मिक और धर्म्मसम्बन्धी ज्ञानका प्रकाश और भी अधिक फैलता है।

जिस दिन मनुष्यके मनमें मनुष्य-जीवनके अद्भुत गूढत्वको जाननेके लिए घबराहट और उखाड़-पछाड़ उत्पन्न होने लगती है, वह दिन उसके लिए बहुत महत्त्वका होता है, यद्यपि उस दिनकी महत्ता उसको उस समय ज्ञात नहीं हो सकती। ऐसा होनेसे यह तात्पर्य है कि उसका उदासीनता, पाशविक आलस्य और स्थूल सुखका सम्वत् समाप्त हो गया है और उस दिनसे वह उन्नतशील और जिज्ञासु बनने लगा है। अब वह निरा मानुषी पशु नही रहा है बल्कि जीवनके प्रश्नोंको हल करनेके लिए अपने समस्त मानसिक बलके द्वारा उद्यत हुआ है और उन संकट और उलझनोंकी—जो सत्यके पहरेदार हैं और जो बुद्धि-मन्दिरके द्वारपर खड़े हैं—खोज करता है।

"बुद्धिमान मनुष्य वही है जो संकट उपस्थित होनेपर न उनसे मुँह छिपाता है और न घबराता है, बल्कि शांतिके साथ स्थिर रहता है।"

अबसे वह स्वार्थयुक्त विश्राम और असावधान अज्ञानका आस्वादन नहीं करता, इन्द्रियोंके तुच्छ सुखका संभोग नहीं करता और अपने

हृदयके धुँधले और अपरिभाषित प्रश्नोंका समाधान करनेसे मुँह नहीं छिपाता। अब उसके अन्दरका स्वर्गीय अंश जग उठा है, मानों एक सोता हुआ देवता रात्रिके असंगत स्वप्नोंसे सचेत हो रहा है और प्रतिज्ञा करता है कि अब मैं उस समय तक नहीं सोऊँगा, जब तक मेरी आँखें सत्यके उज्ज्वल दिनको न देख लेंगी। वह अपने मनमें उठे हुए उच्चतर उद्देश्यों और वीर कार्य्योंको करनेकी अपनी हृदयकी पुकारको अधिक समय तक बैठा नहीं सुन सकता। ऐसा करना उस मनुष्यके लिए असम्भव है, क्योंकि उसकी जागती हुई मानसिक शक्तियाँ कठिन उलझनोंको सुलझानेके लिए वारम्वार उसको प्रेरित करती हैं। उसको सत्य और विवेकके अतिरिक्त पाप और दोषमें शान्ति नहीं मिल सकती। उस अज्ञानको जानकर जिससे उसके सन्देह और उलझन उत्पन्न हुए हैं और उस अज्ञानसे अपने आपको न छिपाकर उसको दूर करनेके हेतु जब वह अनन्त श्रम करता है और दिन प्रतिदिन उस प्रकाशके मार्गको जो उसके सन्देहके अन्धकारको हटा सकेगा और उसके महत्प्रश्नोंका उत्तर दे सकेगा, लगातार ढूँढ़ता है, उस दिन उस मनुष्यका आनन्द बहुत ही विशाल हो जाता है। जैसे किसी कठिन पाठको तय्यार करके बच्चा हर्षित होता है, उसी प्रकार किसी सासारिक आपत्तिको पार करनेपर मनुष्यका हृदय हलका और शान्त हो जाता है। जब मनुष्य किसी मार्मिक और अनन्त प्रश्नको जिसपर वह बहुत समयसे विचार कर रहा है अन्तमें हल कर लेता है और उसके अन्धकारको दूर कर देता है, तब उसका हृदय और भी अधिक हर्षित और शान्त हो जाता है।

तुम अपने संकटों और प्रतिघातोंको अशुभ मत समझो। ऐसा समझनेसे वे सचमुच अशुभ और हानिकारक हो जावेंगे। तुम उनको

शुभफलदायक ही समझो और वास्तवमें वे शुभफलदायक हैं। तुम उनको टाल नहीं सकते हो, इस लिए उनसे मुँह फेर कर मत भागो। जहाँ तुम जाओगे वहीं वे तुम्हारे आगे खड़े मिलेंगे। इस लिए उनका शान्ति और वीरतासे सामना करो। उनके गुरुत्व और विस्तारको तौलो, उनको पृथक् पृथक् विभक्त करके जाँचो, उनके अङ्गोंको पकड़ो और उनकी शक्तिको नापो। इस प्रकार उनको समझ कर उन-पर आक्रमण करो और विजयी होओ। इस प्रकार तुम आनन्दकी उस पगडंडीको पाओगे, जो साधारण दृष्टिसे दिखाई नहीं देती।

४–भार उतारना ।

भार उठानेके विषयमें तो हम बहुत कुछ पढ़ते तथा सुनते हैं परन्तु भार उतारनेके बारेमें जानते कुछ भी नहीं। यदि तुम किसी भारको अपने हृदयसे उतारकर अपने साथियोंमें स्वतन्त्र-हृदय और प्रफुल्ल-मन बनकर रह सकते हो, तो फिर उस असहनीय बोझको क्यों लिये फिरते हो? जब किसी वस्तुको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जाना होता है तब ही मनुष्य उसके बोझको अपनी कमरपर लादता है, अन्यथा नहीं। किसी बोझको सदा अपने कंधोंपर रखकर फिरनेवाला स्वधर्मार्थ प्राणबलि देनेवाला नहीं कहलाता।

"जरहिं पतंग विमोहवश, भार वहैं खरवृन्द।
ते नहिं सूर कहावहीं, समझ देख मतिअन्ध।"

अपने मनपर निरर्थक बोझ क्यों लादते हो और आत्मशोक और आत्मदयाके दु:खसे उस बोझको और भी गुरुतर क्यों बनाते हो? क्यों नहीं, उस वृथा बोझ और दु:खको छोड़कर प्रसन्न होते हो और संसारकी प्रसन्नताको बढ़ाते हो? किसी दु:खदायक बोझको लगातार लिये फिरनेके लिए न कोई न्याययुक्त प्रमाण है और न कोई उचित कारण है। जैसे किसी स्थूल पदार्थको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जानेके लिए बोझ उठाना पड़ता है और वह दु:खदायक नहीं समझा जाता,

उसी प्रकार सूक्ष्म संसारमें भी विचारकी चिन्ताका बोझ केवल किसी शुभफल प्राप्त करनेके निमित्त ही उठाना चाहिए और जब वह मनोकामना सिद्ध हो जाय, तो भारको दूर रख देना उचित है। इस प्रकारके बोझ उठानेसे खेद तो किसी प्रकारका हो ही नहीं सकता, हर्ष अवश्य होता है।

हम कहा करते हैं कि तपस्वी लोग जो समाधि तप इत्यादि करके अपने शरीरको कष्ट देते हैं वह अनावश्यक और व्यर्थ है। परन्तु सहस्रों मनुष्य जो अपने आपको मानसिक कष्ट देते हैं, वे क्या अनावश्यक और व्यर्थ नहीं हैं?

ऐसा कौनसा बोझ है जिससे असुख या क्लेश उत्पन्न होता है? ऐसे बोझ यथार्थमें हैं ही नहीं। यदि कोई बात करनी है, तो उसको प्रसन्नचित्तसे करो न कि विलाप और 'हाय हाय' के साथ। आवश्यकताको अपना मित्र और नेता समझना अत्यंत बुद्धिमत्ता है और बैरी समझकर उसपर भौंहें चढ़ाना और उसको टालने या जीतनेकी चेष्टा या इच्छा करना अत्यंत मूर्खता है।

हमें पग-पगपर आवश्यक कार्य करने पड़ते है। जब हम उनके अस्तित्वको नहीं मानते और उनको नहीं करते, तब ही वे भारी प्रतीत होते हैं। जो मनुष्य किसी आवश्यक कार्यको खिन्न भावसे करता है और साथ ही साथ अनावश्यक आनन्द प्राप्त करनेकी खोज करता है, वह मानो दुःख और निराशाके बिच्छुओंके डंक अपने शरीरमें चुभो रहा है और काम और बेचैनीके बोझको दुगना करके अपने सिरपर रख रहा है।

"हे आत्मन्, अच्छे काम करनेको जाग।
तू ऊँचाईपर पहुँचनेके लिए अपने पंखोंको उठा।

जीवनके भजनका तू नूतन प्रकारसे गान कर।
सत्य और भलाईका राग गा।
असत्यपर जीत पानेका गीत गा।
तू अपने गीतको महत्तर और मधुरतर बना।
तू अपने सन्देह, चिंता, और दुःखोंमेंसे एक हर्ष और आनन्दकी टेर निकाल।
तू अपने मार्गके काँटोंमेंसे एक हर्षका मुकुट रच और गा।"

जो जीवनके कर्त्तव्य हैं, उनको हमें हर्ष, निस्स्वार्थता और अविभक्त ध्यानके साथ करने चाहिए। यद्यपि हमें महान् उत्तरदायित्वको सिरपर रक्खे हुए चलना पड़ता है, परन्तु उसको हमें दुःखदायक बोझ या खेदोत्पादक भार नहीं समझना चाहिए।

तुम कहते हो कि मुझे अमुक वस्तु, कर्त्तव्य या कार्य दुःखदायक और भारी हो रहा है और तुम इस विचारसे दब जाते हो कि "मैं अमुक वस्तु या कार्यको हाथमें ले चुका और मैं इसको अन्त तक करूँगा, परन्तु यह एक भारी और क्लेशदायक कार्य है।"

तुम यह नहीं सोचते कि क्या सचमुच वह कार्य तुम्हें बोझसे दबा रहा है या यह केवल तुम्हारा स्वार्थ है जो तुम्हें उस कार्यको भारी प्रतीत करा रहा है? विश्वास रक्खो कि जिसको तुम एक जकड़नेवाला संकट समझते हो, वह यथार्थमें तुम्हारी मुक्तिका प्रथम द्वार है। वही कार्य जिसको तुम अपने लिए अत्यन्त शाप समझते हो, तुम्हारे लिए वास्तविक आनन्द लानेवाला है। तुम्हारा यह समझना व्यर्थ है कि सच्चा आनन्द तो किसी और ही दूर दिशामें मिलेगा। तुम्हारे किये हुए कार्य दर्पण हैं जिनमें तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है और तुम्हारे कार्योंमें जो तुम्हें धुँधलापन (अर्थात्

न्यूनता) दिखता है, वह तुम्हारी उस मानसिक स्थितिका प्रतिबिम्ब है जिसके साथ तुमने उस कार्यको किया था। किसी भी वस्तुपर हृदयको सत्य और स्वार्थशून्य भावसे लगाओ, तो वह वस्तु झटपट बदल जायगी और शक्ति और आनन्द दिलानेके हेतु एक द्वार बन जायगी। दर्पणमें भौंहें चढ़ाकर अपना मुख देखोगे तो एक डरावना और भद्दा दृश्य दिखाई देगा। तुमने अपना मुँह जैसा बिगाड़ा वैसा ही दृश्य देखनेमें आया। यदि मुखको अच्छा बनाकर दर्पणमें निहारोगे, तो एक सुन्दर आकृति दृष्टिगत होगी।

यदि तुम किसी कार्यका किया जाना उचित और आवश्यक समझते हो, तो उसका सम्पादन भी अच्छा है। उसके सम्पादनसे मुँह फेर लेना उस कार्यको भारी बनाना है। स्वार्थयुक्त इच्छा वस्तुको बुरा प्रतीत करा देती है। जब किसी कार्यका करना अनुचित और अनावश्यक है, तो फिर उस कार्यको केवल किसी ईप्सित सुख अर्थात् इन्द्रियभोगके लिए सम्पादन करना मूर्खता है। इससे कष्टदायक परिणाम उत्पन्न होते हैं।

तुम्हारा कर्तव्य जिससे तुम परे हटते हो तुम्हें सत्य मार्गपर चलानेवाला स्वर्गदूत है और वह इन्द्रियोंको सुख पहुँचानेवाला आह्लाद जिसके पीछे तुम दौड़ रहे हो तुम्हारी मिथ्या प्रशंसा करनेवाला शत्रु है। तुम्हें दूषित मार्गसे पैर लौटाकर—सुबुद्धिका पथ ग्रहण करना चाहिए।

प्रकृतिका यह एक उपकार है कि वह अपने परिमाणोंको अविरुद्ध रखनेके हेतु समस्त प्रमाणियोंको सर्वत्र और सर्वदा बुद्धिमत्ताकी ओर प्रेरित करती रहती है। मूर्खता और स्वार्थसे तीव्र क्लेशका उत्पन्न होना अच्छा है, क्योंकि क्लेश उदासीनताका शत्रु और बुद्धिमत्ताका चोबदार है। मनुष्यको जब संकट और क्लेश घेरते हैं, तब ही

वह अपने उदासीन भावको त्यागता है और उनसे मुक्त होनेके लिए प्रयत्न करता है। इसीसे उसमें बुद्धिका अधिक संचार होता है।

पीडा क्या है? खेद क्या है? बोझ क्या है? उद्वेग पीड़ा है, अज्ञानता खेद है और स्वार्थ बोझ है।

स्वार्थ-देवीकी यह पूजा मनुष्यके विचार और कार्य समाप्त हुए पश्चात् रुलाती और खेद पहुँचाती है।

उद्वेग, अज्ञानता और स्वार्थको अपने मन और आचरणसे दूर करो, तुम्हारा जीवन क्लेशसे अपने आप मुक्त हो जायगा। आन्तरिक स्वार्थको छोड़कर उसके स्थानपर निष्कपट प्रेमको स्थापित करनेसे बोझ हलका हो जाता है। हृदयमें प्रेम रखकर कार्य करनेसे वह हलका और मुदित रहता है।

मन अज्ञानताके कारण अपने लिए भार उत्पन्न कर लेता है और अपने आपको दंड देता है। बोझको सिरपर लिये फिरनेका किसीको दंड नहीं दिया गया है। यह भार मनुष्य अपनी इच्छासे लिये फिरता है। मस्तिष्कका यथोचित राजा बुद्धि है। जब क्रोध या उद्वेग उसके सिंहासनको छीन लेते हैं, तो उस मानसिक राज्यमें राष्ट्र-विप्लव हो जाता है। सांसारिक विलास-विनोदोंकी आसक्ति आगे आगे चलती है और उसके पीछे पीछे भारीपन और क्लेश चलते हैं। अब जिसको चाहो ग्रहण कर लो। यदि तुम क्रोधादि उद्वेगोंसे बँधे हुए हो और अपने आपको सहायताहीन समझते हो, तो भी बन्धनमुक्त हो सकते हो। अपनी आधुनिक हीन दशाको तुम धीरे धीरे पहुँचे हो। तुम अच्छी अभिषेक भी धीरे धीरे वापस पहुँच सकते हो और बुद्धिका स्थापित करके क्रोधको सिंहासनसे

नीचे उतार सकते हो। भोग-विलासोंको छातीसे लगानेके पूर्व ही मनुष्य बुराईसे बच सकता है। यदि कहीं एक बार उनमें रत हो गया, तो फिर उनसे छुटकारा तब ही मिलेगा जब उनके दुष्परिणामोंको अनुभव करके वह समझ लिया जायगा। कर्त्तव्यपरायणता अंगीकार करनेके पूर्व ही बुराईसे बचनेका संकल्प निश्चित हो जाता है, क्योंकि कर्त्तव्य-परायणता धारण करते ही समस्त स्वार्थके विचार, बड़बड़ाहट और हाय-धाय आदि हृदयसे निकालने पड़ते हैं। कर्त्तव्य-परायणता और उत्तरदायित्वको प्रेम और विवेकसे अङ्गीकृत करनेसे उनका भार हलका हो जाता है।

मनुष्य-बोझ हीन विचारों और स्वार्थपूर्ण लालसाओंसे और भी गुरुतर और असहनीय हो जाता है। यदि तुम्हारी दशा संकटपूर्ण है, तो इस लिए है कि तुम्हें उसकी आवश्यकता है और उसका सामना करनेके हेतु तुम अपनी शक्तिका विस्तार कर सकते हो। वह तुम्हें कड़ी और कठिन यों प्रतीत होती है कि तुम्हारे भीतर निर्बलताका अंश है और जब तक वह अंश दूर नहीं होगा, तब तक उक्त दशा तुम्हें वैसी ही कड़ी और कठिन प्रतीत होती रहेगी। ऐसी दशाके उपस्थित होनेसे तुम्हें हर्षित होना चाहिए कि तुम्हें अपनी शक्ति और बुद्धि बढ़ानेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। बुद्धिके सम्मुख कोई भी संस्था कठिन नहीं हो सकती और प्रेमको कोई भी शक्ति परिश्रान्त नहीं कर सकती। कठिनाईकी चिन्ता करना छोड़ दो और अपने निकटवर्तियोंके जीवनपर विचार करो।

एक ऐसी स्त्री है जिसके बहुत बड़ा परिवार है और अपने पंदरह रुपये मासिक वेतनसे वह बड़ी कठिनाईसे ज्यों-त्यों करके घरका खर्च चलाती है। वह घरके कपड़े धोनेतकका कार्य अपने

कार्यौंसे करती है और बीमार पड़ोसियोंकी भी सेवा-शुश्रूषा करती है। वह कर्ज और निराशाके कीचड़से बिल्कुल बची हुई है। वह सूर्योदयसे रात्रिपर्यंत हर्षित रहती है और किसी भी कठिन संस्थाके लिए शिकायत नहीं करती। वह स्वार्थशून्य होनेके कारण सदैव प्रसन्नमुखी रहती है। वह इस विचारसे सुखी है कि मैं दूसरोंके सुखका कारण बनी हुई हूँ। यदि वह कहीं ऐसी बातें विचारने लगे कि कल अमुक छुट्टी है, उस दिन नाटक देखने जाऊँ। घरेलू कार्यों और खर्चसे अवकाश मिले, तो नई नई फेशनकी वस्तुएँ खरीदूँ, खेल तमाशे देखने और गाना सुननेको जाऊँ, किताबें पढ़ूँ, इधर उधरकी स्त्रियोंसे मित्रता करूँ, तो वह कितनी दुखी और क्लेशपूर्ण हो जायगी? उसका गृह-कार्य उसे कितना भारी प्रतीत होने लगेगा? घरका छोटासा काम भी उसको ऐसा ज्ञात होगा जैसे कोई भारी पत्थर उसकी गर्दनसे बँधा हुआ है और उसके बोझसे वह शीघ्र ही स्मशानभूमिमें जायगी। परन्तु स्वार्थके हेतु वह ऐसे विचार नहीं करती, इसी लिए उसको कुछ भी भारी नहीं जान पड़ता है और वह प्रसन्न रहती है। हर्ष और निःस्वार्थ भाव दोनों घनिष्ट मित्र हैं। स्नेहको काम भारी प्रतीत नहीं होता।

अब एक दूसरी स्त्रीको लो, जिसके आवश्यकतासे भी अधिक एक अच्छी खासा आमदनी है और जो वैभव और विलासके साथ रहती है; परन्तु सामाजिक आवश्यकतासे कुछ विशेष कर्त्तव्योंके पालनमें उसको अपना कुछ समय, विलास और द्रव्य खर्च करना पड़ता है। इस उपकारके कामको प्रेमके साथ करना चाहिए, परन्तु इसके विपरीत वह इस कार्यसे अपना पिंड छुड़ाना चाहती है और सदा असन्तुष्ट और असुखी रहती है और अपनी कार्यवाहीको 'कठिन

संस्था' बतलाती है। जैसे हर्ष और निःस्वार्थ दोनों मित्र हैं, वैसे ही असन्तोष और स्वार्थ भी अविभक्त साथी हैं। आत्मस्नेह कामको हर्षयुक्त नहीं समझता।

जीवनमें उपर्युक्त दोनों प्रकारके उदाहरण बहुत हैं। दोनों चित्रोंमें कठिन दशा कौनसी स्त्रीकी है? वे दोनों ही दशाएँ कठिन और संकटप्रचुर नहीं हैं। जितना जितना प्रेम या स्वार्थ उन व्यवस्थाओंमें भरा हुआ है, उतना ही वे आनन्दपूर्ण या क्लेशपूर्ण हैं। इस विषयके दुःख या सुखकी जड़ उस व्यक्ति विशेषका मनोभाव है न कि वह व्यवस्था। कोई मनुष्य धर्मशास्त्र या किसी तंत्रविद्याका अध्ययन आरम्भ करता है और कहता है कि यदि मेरे ऊपर स्त्री और परिवारका भार नहीं होता, तो मैं कोई बहुत बड़ा काम करता और यदि जैसा ज्ञान मुझे अब है वैसा पहले होता, तो मैं विवाह ही न करता। परन्तु हमारा यह कथन है कि उस मनुष्यको अभी तक बुद्धिका सीधा और विशाल मार्ग दृष्टिगत ही नहीं हुआ है और जिस महत्कार्यको करनेके लिए वह ऐसा लालायित हो रहा है, उसके सम्पादनके योग्य वह है ही नहीं। यदि किसी मनुष्यके हृदयमें मनुष्य जातिके लिए इतना प्रेम है कि वह उसके उपकारार्थ किसी महत्कार्यको करना चाहता है, तो उस असीम प्रेमको, वह चाहे जैसी स्थितिमें क्यों न हो, प्रकाशित किये बिना नहीं रहता। उस प्रेमभावसे उसका समस्त वासस्थान भरा हुआ रहेगा और उसके स्वार्थशून्य प्रेमका सौन्दर्य शान्ति और माधुर्य जहाँ वह जायगा वहीं उसके साथ रहेगा और अपने निकट रहनेवालोंको सुखी और प्रत्येक वस्तुको भली बनाता रहेगा। जो प्रेम केवल बाहर दिखाया जाता है परन्तु घरमें नहीं होता, वह प्रेम नहीं है किन्तु गर्व या अहंकार है।

कई धर्म्मोपदेशकोंके ऐसे घर देखनेमें आते हैं जो हर्षशून्य हैं और जिनमें बच्चोंकी भी सार सँभाल नहीं की जाती। वे धर्म्मोपदेशक दूसरोंके घरोंके लिए सुख और हर्षका उपदेश देते हैं और स्वयं अपने घरोंकी ऐसी दशा रखते हैं! वे दुनियाको ठगते ठगते अपने आपको भी धोखा दे रहे हैं। समझते हैं कि गृहत्यागसे ही हम धर्म्मोपदेश कर सकते हैं। अपने आपको धोखा देनेवाले ऐसे मनुष्य स्वयं उत्पन्न किये हुए कष्टोंको पवित्र और धार्म्मिक भार समझते हैं और उसको सिरपर लिये हुए फिरते हैं।

महत्पुरुष महत्कार्यको कर सकता है। जब वह उस कार्यको उधेड़कर और खोलकर प्रकाशित कर देता है और उसके मर्मोंको जान लेता है, तब वह चाहे जहाँ हो और चाहे जैसी दशामें हो अपने उन्नत कार्यको अवश्य सम्पादित कर लेता है।

तुम जो मनुष्यजातिके उपकारार्थ इतने चिन्तित हो रहे हो पहले अपने घरका उपकार करो। तुम स्वयं अपनी, पड़ोसीकी, स्त्रीकी और बच्चोंकी सहायता करो। तुम धोखा मत खाओ। जब तक तुम सच्ची भक्तिके साथ निकट रहनेवालों और अपनेसे छोटोंका भला नहीं कर सकते, तब तक दूरवालों और बड़ोंका भला नहीं कर सकोगे। अँगरेजीमें कहावत है कि "खैरात घरसे आरम्भ होती है।"

यदि किसी मनुष्यने अपने जीवनके बहुतसे वर्ष भोग-विलास और इन्द्रियलोलुपतामें व्यतीत किये हैं, तो प्रकृत्यानुसार यह आवश्यक है कि उसका बटोरा हुआ पाप अन्तमें उसे भारसे पीडित करे, क्योंकि जब तक तक उसपर असहनीय बोझ नहीं पड़ेगा तब तक वह उनको नहीं छोड़ेगा और न सुष्ठुतर जीवनका मार्ग ही पकड़ेगा।

परन्तु जब तक वह अपने आपके उत्पन्न किये हुए पाप-भारको ईश्वरदत्त या पुण्यपदार्थ या महत्ताका लक्षण या दूसरोंका उसके सिर-पर रक्खा हुआ बोझा समझता है, तब तक वह केवल अपनी मूर्खताको विस्तृत करता है, अपने बोझकी तौल और अपने क्लेश और खेदकी गणना बढ़ाता है। जब वह इस सत्यको समझ लेगा कि उसके भार स्वयं उसके बनाये हुए हैं और वे उसीके कार्योंके संचित परिणाम हैं, तब वह आत्मदयाको छोड़ेगा और बोझको हलका करनेका उपाय निकालेगा। जब इस बातको देखनेके लिए वह अपने नेत्र खोलेगा कि उसका प्रत्येक विचार और कार्य उसके जीवन-मंदिरको बनानेके ईंट और पत्थर हों, तब वह अपनी आध्या-त्मिक दृष्टिको बढ़ावेगा जिससे वह अपने पूर्वमें किये हुए कार्योंको नापायदार स्वीकार करेगा और भविष्यमें उनको योग्यता और दृढ-ताके साथ करना आरम्भ कर देगा।

दुःखदायक भार उसी समय तक आवश्यक हैं जब तक हममें प्रेम और विवेककी न्यूनता है।

आनन्दका मन्दिर क्लेश और अभिमानके बाहरी परकोटोंके अन्दर है और वहाँ पहुँचनेके हेतु यात्रीको इन परकोटोंके अन्दर होकर जाना पड़ता है। इन बाहरी परकोटोंमें उसको अल्पकाल तक ठहरना पड़ता है, परन्तु तभी तक ठहरना पड़ता है जब तक वह अपनी कच्ची समझके कारण इन्हींको अन्दरका पूज्यस्थान समझे रहता है। जब तक वह अपने आपपर दया करेगा और दुःखको पवित्र समझेगा, तब तक दुखी ही रहेगा। परन्तु आत्मलालनको सम्पूर्णतासे त्यागकर जब वह देखेगा कि दुःख और क्लेश तो केवल मार्ग हैं न कि मनोरथ या फल, तब वह अपने मन और विचारोंको

शुद्ध करके उन बाहरी परकोटेंमें होते हुए शान्तिके अन्दरके मन्दिरमें प्रवेश करेगा।

क्लेश अपूर्णतामें उत्पन्न होता है न कि सम्पूर्णतामें। यह अपरिपकताका लक्षण है न कि परिपकताका। इस लिए क्लेशसे मुक्ति हो सकती है। इसके उत्पन्न होनेका कारण खोजा जा सकता, समझा जा सकता और दूर हटाया जा सकता है। इस लिए यह सत्य है कि विश्रामके हेतु हमें क्लेशमें होकर और शान्तिके हेतु निर्जनतामें होकर जाना पड़ता है। परन्तु दुखीको स्मरण रखना चाहिए कि क्लेशोंमें होकर उसको केवल निकलना है, ठहरनान हीं है। क्लेश द्वार हैं न कि वासस्थान, निर्जनता मार्ग है न कि निर्दिष्टस्थान। इस प्रकार यात्रा समाप्त करके वह दुःखरहित और आनंदमय विश्रामको प्राप्त करेगा।

बोझ थोड़ा थोड़ा संचित होकर बढ़ता है। इसका गुरुत्व इतनी सूक्ष्मतासे और धीरे धीरे बढ़ता है कि ज्ञान भी नहीं होता। विचारशून्य उद्वेग, उत्कट आत्मस्नेह, किसी अन्धी लालसाका उत्पन्न होना और उसका वारंवार इष्ट भोग प्राप्त करके सन्तुष्ट होना, अपवित्र विचारोंका प्रादुर्भाव, कटुवचन कहना, मूर्खता करना इत्यादि सहस्रों दोषोंके पापसंचयका भार क्लेशदायक और असहनीय हो जाता है। आरम्भमें कुछ समय तक बोझ कष्ट नहीं देता, परन्तु दिन प्रतिदिन वह बढ़ता जाता है और फिर एक समय ऐसा आता है जब स्वार्थताके कड़वे फल इकठे हो जाते हैं और जीवनकी हारसे हृदय दुःखित होता है, तब वह बोझ अत्यंत दुःखदायी प्रतीत होने लगता है। जब यह समय आजावे तो दुखीको चाहिए कि वह अपनेको देखे और भारको गिरानेकें उपायको खोजे। यदि वह उपाय मिल जायगा तो उसको

भले प्रकार और योग्यताके साथ जीवन व्यतीत करनेके लिए विवेक पवित्रता और प्रेम प्राप्त हो जावेगा।

अपने पूर्वचरित्रको, जिसके कारण उसके सिरपर पाप भार चढ़ा था, बदलनेसे उसका समय चैनसे व्यतीत होने लगेगा और वह अपने कर्त्तव्य कार्यको हर्षसे करेगा। इस प्रकार पाप-भारको उतारना क्या एक आनन्दकी पगडंडी नहीं है?

गुप्त आत्मोत्सर्ग ।

जब स्वर्ग हमारे चौतरफ और हमारे भीतर है, तो हमें जगह जगह भटकनेसे क्या लाभ हो सकता है । प्रत्येक गुणकी नींव विनय है। जो नींवको अच्छी बनाता है वह दृढताके साथ बनाता है । —बेली ।

तुम्हारा मत चाहे जो हो, सत्य तुम्हारे अन्दर है । वह बाहरी वस्तुओंसे उत्पन्न नहीं होता । —ब्राउनिंग ।

ऐसा कहना सत्यसे विपरीत जान पड़ता है कि त्यागसे हमें प्राप्ति होती है और लोभसे हानि होती है । गुण प्राप्त करनेके लिए हमें अवगुणकी हानि उठानी पड़ती है । प्रत्येक पुण्यकी प्राप्तिके लिए प्रत्येक स्वार्थिक विलास त्यागना पड़ता है । सत्यके मार्गपर जैसे जैसे पैर बढ़ाना जाता है वैसे वैसे असत्य और दोष छोड़ने पड़ते हैं ।

जिस प्रकार नवीन वस्त्र पहननेके पूर्व पुराने वस्त्र उतारने पड़ते है, उसी प्रकार सत्य ग्रहणके लिए असत्यका परित्याग करना पड़ता है । माली शाक-पातको खोदकर निकाई इस वास्ते करता है कि वे सड़कर और खाद होकर उसके लगाये हुए पौधोंका आहार बन जावें । इसी प्रकार बुद्धिवृक्ष भी निकाईमें उखाड़ी हुई मूर्खताओंके खादसे पोषण पाता है । लाभके लिए आत्मोत्सर्गकी आवश्यकता है । सत्य जीवन—आनंद-

(वह जीवन जो क्लेश और उद्वेगसे पीड़ित नहीं होता

आत्मोत्सर्गसे प्राप्त होता है। बाहरी वस्तुओंके उत्सर्गसे नहीं किन्तु भीतरके दोष और अपवित्रताओंके उत्सर्गसे ऐसा जीवन प्राप्त होता है, क्यों कि ये ही आन्तरिक विकार मनुष्यके लिए दुःख और क्लेश उत्पन्न करते हैं। अच्छे और सत्यके बलिदानकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु असत्य और बुरेके बलिदानकी आवश्यकता है। इस लिए उत्सर्गसे अन्तमें लाभ ही होता है, हानि नहीं होती। आरम्भमें उत्सर्ग बड़ा कष्टदायक प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य स्वार्थके कारण भ्रम और अन्धकारमें पड़ा हुआ रहता है। यह स्वाभाविक नियम है कि जब किसीकी प्रकृतिमेंसे स्वार्थताका अंश काटा जाता है, तब पीड़ा अवश्य पहुँचती है। जब शराबी मदिरा पीना छोड़नेका दृढ संकल्प करता है, तो उसको बहुत क्लेश होता है और वह समझता है कि मैं एक बड़े आनन्दको त्याग रहा हूँ। परन्तु जब उसकी विजय सम्पूर्ण हो जाती है, उसकी मदिरा-पानकी इच्छा नष्ट हो जाती है और उसका मन शान्त और सचेत हो जाता है, तब वह जानता है कि उसके पाशविक और स्वार्थिक विश्वासके त्यागनेसे उसको असीम लाभ हुआ है; जो कुछ उसने खोया है वह बुरा और झूठा है। वह रखनेके योग्य नहीं था और उसके रखनेसे उसको नितान्त दुःख होता। परन्तु सदाचार और आत्मदमनका जो उसको लाभ हुआ है वह अच्छा और सत्य लाभ है और उसकी प्राप्ति उसके लिए आवश्यक थी।

सर्व प्रकारके सत्य उत्सर्गोंकी यही स्थिति है। आरम्भमें और सम्पूर्णता तक ये दुःखदायक ज्ञात होते हैं और इसी लिए मनुष्य इनसे घबड़ाते हैं। स्वार्थिक भोग और लालसाओंको छोड़ने और जीतनेमें मनुष्योंको कुछ भी भलाई नहीं दिखती। उनको बुरा मालूम

होता है कि कितने मधुर आनन्दोंकी हमें हानि होती है और उनके स्थानमें कितना क्लेश और असुख उठाना पड़ता है। ऐसा होना भी चाहिए। क्योंकि यदि कोई मनुष्य जान लेता कि स्वार्थके विशेष प्रकारोंको त्यागनेसे उसको अपरिमित सुखका लाभ होता है जो कि अत्यंत दुष्प्राप्य है, तो उस सुखकी प्राप्ति उसके लिए बहुत ही कठिन हो जाती, क्योंकि उसके इस यथार्थ लाभकी लालसा (अर्थात् स्वार्थकी लालसा) और भी प्रबल हो जाती और जहाँ स्वार्थ है वहाँ सुख कैसा?

जब तक मनुष्य लाभ या पारितोषिकका कुछ भी विचार न करके हानि उठानेको कटिबद्ध नहीं होता, तब तक वह निःस्वार्थी नहीं हो सकता और परमानन्दको नहीं पा सकता। मनकी इस प्रकारकी स्थिति ही मनुष्यको स्वार्थशून्य बनाती है। अपने निकटवर्तियोंके सुखके हेतु आत्मलाभ या पुरस्कारकी इच्छा न रखकर मनुष्यको नम्रताके साथ अपने स्वार्थपूर्ण कार्य और स्वभाव छोड़ने चाहिए, क्योंकि वे असत्य और अयोग्य हैं। यदि ऐसा करनेसे जगत् अधिक सुन्दर और सुखी बनता हो, तो इतना ही नहीं किन्तु उसको अपने विलास और सुख बल्कि जीवनतकको भी त्याग देना चाहिए। ऐसा करनेसे क्या यथार्थमें वह हानि उठाता है? जब कृपण धनकी लालसा त्यागता है, तब क्या वह सचमुच हानि उठाता है? जब चोर चोरी करना छोड़ता है, तब क्या उसको हानि होती है? स्वार्थत्यागसे किसीको हानि नहीं होती, तो भी मनुष्य यही विचारता है कि ऐसा करनेसे उसको हानि होती है, इसीसे उसको कष्ट होता है और यही कष्ट उसकी हानि है। इसीमें आत्मोत्सर्ग है। हानिसे लाभ इसी प्रकार होता है।

सत्य बलिदान या उत्सर्ग भीतरका है। यह आध्यात्मिक और

गुप्त है और हृदयके गम्भीर विनीत भावसे उत्तेजित होता है। आत्मोत्सर्ग बिना कुछ भी नहीं होता और आध्यात्मिक ज्ञानविस्तारके समय मनुष्यको इसीपर अवलम्बित होना पड़ता है। परन्तु यह आत्मसमर्पण किन पदार्थोंका बना है, किस प्रकार प्रयोजित होता है, कहाँ ढूँढ़ा जाता है और कहाॅ मिलता है? स्वार्थिक विचारों और कार्योंमें जो मनुष्यकी दैनिक प्रवृत्ति होती है उसको जीतने और दबानेसे आत्मोत्सर्ग होता है।

दूसरोंके साथ जो अपना साधारण व्यवहार है, उसमें यह प्रयोजित होता है और कोलाहल और लोभकी घड़ीमें यह प्राप्त होता है। हृदयके गुप्त और गम्भीर आत्मोत्सर्ग बहुत प्रकारके होते हैं। उनके सम्पादनमें पीड़ा अवश्य होती है परन्तु उनके करनेवाले और जिसके लिये वे किये जाते हैं उन दोनों ही व्यक्तियोंको असीम आनन्द प्राप्त होता है। महत् कार्य करनेके लिए—जिसमें भारी आत्म बलिदानकी आवश्यकता है—वे करनेको उत्सुक और उद्यत रहते हैं, परन्तु जो छोटे छोटे आत्मसमर्पण हैं और जिनको वे कर सकते हैं उनको भूल रहे हैं और उनकी ओरसे उन्होंने नेत्रोंपर पट्टी बाॅध रक्खी है। जहाॅ तुम्हारा नाशकारक पाप है वहाॅ तुम्हारी निर्बलता है। जहाॅ तुम्हें लोभ अधिक सताता है वहीं तुम अपने प्राथमिक आत्मोत्सर्गको आरम्भ करो। ऐसा करनेसे तुम्हें शान्ति-मार्ग मिल जायगा। कदाचित् तुम्हारा प्रधान दोष क्रोध और अदयालुता है। क्या तुम क्रोधोद्वेग, कटुवचन अदयालु विचार और कर्म्म नहीं त्याग सकते हो? क्या तुम कटु वचन, आक्रमण, दोषारोपण और अकृपाको चुपचाप सहन करने और प्रत्यपकार न करनेके लिए सन्नद्ध हो सकते हो? इतना ही नहीं बल्कि, इन मूर्खताओंके बदलेमें दया और स्नेह नहीं दे सकते

हो ? यदि ऐसा कर सकते हो तो परमानन्दको पहुँचानेवाले गुप्त आत्मोत्सर्गोंके लिए भी तुम तैयार हो गये हो ।

यदि तुम्हारे स्वभावमें क्रोध और अदयालुता है, तो उनको छोड़ो । मनकी ऐसी कठोर निर्दय और अनुचित वृत्तियोंसे तुम्हें कभी लाभ नहीं हुआ है । ऐसा स्वभाव तुम्हें अस्वस्थता, दुःख और आध्यात्मिक अन्धकारके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिला सकता । दूसरोंको भी इनके सिवा तुम और कुछ नहीं दे सकते । कदाचित् तुम कहोगे कि अमुक व्यक्तिने मेरे साथ पहले निर्दयता की, उसने मेरे साथ अनुचित व्यवहार किया । मान लिया कि ऐसा ही हुआ होगा, परन्तु यह एक बड़ा नीच बहाना है । यह एक बड़ी भीरुवृत्ति है । यदि तुम्हारे साथ उसकी अदयालुता दूषित और हानिकारक है, तो उसके साथ भी तुम्हारी अदयालुता दूषित और हानिकारक है । यदि एक मनुष्य तुमपर कृपा नहीं करता तो यह कैसी कुनीति है कि तुम भी उसपर कृपा नहीं करो ? ऐसे अवसरपर तुम्हें और भी अधिक कृपा दिखानी चाहिए । जल-प्रवाह और जल डालनेसे बन्द नहीं हो सकता किन्तु बढ़ता है । अदयालुतासे अदयालुता न्यून नहीं हो सकती । अग्निसे अग्नि बुझ नहीं सकती । क्रोधसे क्रोध नहीं जीता जा सकता ।

अकृपाका और क्रोधका त्याग करो । ताली दोनों हाथोंसे बजती है, इसलिए तुम दूसरा हाथ मत बनो । यदि कोई मनुष्य तुमसे क्रुद्ध या रुष्ट हो रहा है, तो ढूँढ़ो कि तुमने क्या दोष किया है । उसके बदलेमें तुम क्रुद्ध और निर्दय मत बनो । ऐसे अवसरपर शान्त, क्षान्त और दयालु बने रहो और भलाई करनेमें लगातार रत रहकर दोष करनेवालोंपर दया करना सीखो ।

यदि स्वभावहीसे तुम अधीर और चिड़चिड़े हो, तो अधीरता त्यागनेके गुप्त आत्मोत्सर्गको सीखो। जिस स्थानपर तुम्हारा स्वभाव अधीर होता हो वहाँ उसको रोको। अधैर्यके निर्दय अधिकारके कदापि अधीन न होनेका प्रत्युत उसको जीतनेका दृढ संकल्प करो। अधैर्यको घड़ीभर भी अपने स्वभावमें मत रहने दो और यह धोखा मत खाओ कि दूसरोंकी मूर्खता और दोषोंके कारण तुम्हें अवश्य अधीर बनना पड़ता है। दूसरे चाहे जो कहें या करें; चाहे वे तुम्हें चिढ़ावें और छेड़ें, परन्तु तुम धैर्य मत छोड़ो। अधीरता न केवल अनावश्यक है बल्कि जिस दोषको दूर करनेके लिए यह उत्पन्न होती है उसीको उलटा बढ़ाती है। अधीरता और चिड़चिड़ापन दुर्बलता और अयोग्यताके लक्षण हैं। इनसे तुमको और तुम्हारे पड़ोसियोंको कुछ विश्राम, शान्ति और सुख नहीं मिलता है, बल्कि हीनता और दुर्भाग्य प्राप्त होते हैं। तुम्हारी अधीरतासे दूसरोंको तो चोट पहुँचती ही है, परन्तु स्वयं तुमको भी आघात पहुँचता है।

अधीर जन सत्य आनन्दको बिल्कुल नहीं जानता, क्यों कि वह सदैव दुखी और बेचैन रहता है। वह धैर्यके शान्त सौन्दर्य और अनन्त माधुर्यसे अनभिज्ञ रहता है। उसके मनको विश्राम देनेके लिए शाति उसके निकट भी नहीं आ सकती।

जबतक अधीरताका उत्सर्ग नहीं हो, आनन्द कदापि नहीं मिल सकता। इस उत्सर्गसे सहनशीलताकी वृद्धि होती, क्षातिका अभ्यास होता है और नवीन और विनीत स्वभाव बनता है। जब अधैर्य और चिड़-चिड़ापन बिल्कुल दूर हटा दिये जाते है और निःस्वार्थताकी वेदीपर

अग्निसात् कर दिये जाते हैं, तभी सबल, स्थिर और शान्त मनका आनन्द भोगा जाता है।

ऐसे बहुतसे छोटे छोटे स्वार्थपूर्ण विलास हैं जो बाहरसे निर्दोष प्रतीत होते हैं और उनका सेवन किया जाता है। परन्तु कोई भी विलास हो यदि उसमें स्वार्थकी वासना है तो वह हानिकारक अवश्य होता है। लोग नहीं समझते हैं कि ऐसे भोग-विलासोंके पीछे बारंबार दौड़नेसे उनको कितनी महती हानि पहुँचती है। मनुष्यमें ईश्वरीय और पाशविक ये दो अंश होते हैं। ईश्वरीय अंश तब ही उन्नत होता है जब पाशविक अंश छटता है। इन्द्रियोंको काल्पित सुख पहुँचानेवाले विलास बाहिरसे चाहे जितने निर्दोष ज्ञात होवें, परन्तु वे मनुष्यको सत्य और आनन्दसे दूर घसीटते हैं। और जैसे जैसे मनुष्य अपनी इन्द्रियोंको पाशविक सुख देता है वैसे वैसे ही वे इन्द्रियाँ प्रबल होती जाती हैं। जब तक इन छोटे बाहरी विलासोंको मनुष्य नहीं छोडता तब तक वह इस बातको नहीं समझ सकता कि ऐसा करनेसे उसने कितने बल, हर्ष, सदाचार और पवित्र भावको नष्ट किया है। मनुष्य जब तक स्वार्थिक भोग-विलासोंका परित्याग नहीं करता है, तब तक वह सच्चे हर्षको नहीं पा सकता।

इस आत्म-स्नेह और इन्द्रियलोलुपतासे मनुष्य अपने आपको पतित बनाता है, आत्म-गौरवको नष्ट करता है और संसारमें अच्छे कार्य करनेके अपने प्रभाव और बलको खो देता है। इच्छाओंके वशीभूत होकर वह अपने आन्तरिक अन्धकारको इतना अधिक बढ़ा लेता है कि पदार्थोंके मर्मको देखनेकी ओर वास्तव और सत्यको पहचाननेकी दृष्टिसे वह हाथ धो लेता है। पाशविक विलास सत्य-गवेषणका शत्रु है। विलासोंके उत्सर्गसे मनुष्य अस्थिरता और सन्देहको दबा लेता है और आबाद दृष्टि और दृढ विश्वासको प्राप्त करता है।

तुम अपनी दुलारी और इष्ट वासनाओंको छोडो और क्षणिक सुखकी अपेक्षा अधिकतर स्थायी, उन्नततर और उच्चतर सुखपर अपना मन लाओ । इन्द्रियलोलुपतासे ऊपर रहोगे तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ और सन्दिग्ध नहीं रहेगा ।

कई मनुष्य अपने ही वचनको प्रमाण समझते है । जो कुछ उन्होंने कह दिया उसीको ब्रह्मवाक्य मनानेके लिये वे दूसरोंसे लड़ते झगड़ते है। इस प्रकृतिको छोडनेसे दूसरोंपर बड़ा अच्छा प्रभाव पडता है । दूसरोंके जीवन, सम्मति और धर्ममें दखल देनेकी प्रकृतिको छोड़ना चाहिये, बल्कि उनके साथ सहिष्णुता रखनी चाहिये । अपने वाक्य या अनुमतिको ही प्रमाण समझना—यह एक इस प्रकारका स्वार्थ है जो विद्वानों या वक्ताओंमें बहुधा पाया जाता है । ऐसा करना निर्दय और अन्ध हठ है । आरम्भमें तो वाक्यहठ बहुत कठिनतासे छूटता है परन्तु एक बार मस्तिष्कमें सुशीलता और प्रेमका प्रवेश हो जाता है, तो इस हठका भद्दा और दुःखदायक स्वरूप प्रगट हो जाता है ।

हठी मनुष्य अपनी सम्मतिहीको आदर्श मानता है और दूसरोंको, जिनकी अनुमति और आचार उसके विरुद्ध हैं, दूषित समझता है । वह दूसरोंको उचित मार्गपर लानेकी कामना करके आप स्वयं उचित मार्गपर नहीं चलता । जब दूसरे मनुष्य उसको ठीक बनाना चाहते हैं और उससे विरोध करते हैं तो उसको बड़ा आघात पहुँचता है और वह बड़ा दुःखित होता है । इसका फल यह होता है कि उसको सदा अप्रसन्न, क्रोधपूर्ण और निर्दय विचारोंका ज्वर चढा रहता है । ऐसा मनुष्य जब तक दूसरोंसे अपनी प्रणालीके अनुसार कार्य कराने और विचार करानेकी इच्छाको नहीं छोड़ता तब तक

शान्ति, ज्ञान और उन्नतिको नहीं प्राप्त कर सकता। न वह दूसरोंके हृदयको जान सकता है और न उनके काम और कामनाओंमें प्रेम-भावके साथ सहानुभूति रख सकता है। उसका मन ऐंठ और कटु-पनसे बंद रहता है, अतः उसके अन्दर मधुर सहानुभूति और आध्यात्मिक ध्यान प्रवेश नहीं कर सकता।

जो मनुष्य इस हठको त्याग देता है वह दूसरोंके साथ दैनिक व्यवहारमें अपनी अनुमति और पक्षपातको दूर रखकर दूसरोंसे स्वयं सीखनेके लिये और जैसे वे हैं उनके मनोंको जाननेके लिये प्रयत्न करता है और उनको अपनी अनुमति प्रकट करनेकी उतनी ही स्वत-न्त्रता देता है जितनी अपनी अनुमति प्रकाश करनेको खुद लेता है। उसको पूर्वकी अपेक्षा अधिकतर ज्ञान, अनुकम्पा और आनन्द अनु-भूत होता है और वह ऐसी आनन्दकी पगडंडीको पा लेता है जो पहले उसकी दृष्टिमें न आती थी।

इसके पश्चात् लोभ और लोभप्रचुर विचारोंका विमोचन करना चाहिये। हमारे अतिरिक्त दूसरोंको भी लक्ष्मीकी प्राप्ति हो जावे तो इससे हमें प्रसन्न होना चाहिये। दूसरोंकी अच्छी वस्तुओं और प्राप्ति-योंको भोगते देखकर हमें हर्षित होना चाहिये। अपने लाभको दूस-रोंके लाभके निमित्त निस्स्वार्थता और शुद्धभावके साथ छोड़ देना बड़े मर्मकी बात है। मनको इस प्रकारके भावके ग्रहण करनेसे गम्भीर शान्ति और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। स्वार्थका सत्य उत्सर्ग यही है।

आर्थिक सम्पत्तियाँ-क्षणिक हैं, वे स्थायी नहीं हैं। इस लिए हम उनको अपनी नहीं कह सकते। वे हमारे पास अल्प कालके लिये हैं। परन्तु आध्यात्मिक प्राप्तियाँ स्थायी हैं और सदैव हमारे साथ

रहती हैं। निःस्वार्थता एक ऐसी आध्यात्मिक प्राप्ति है जो आर्थिक सम्पत्ति और सुखको त्यागनेसे, वस्तुओंको ऐसी समझनेसे कि ये सब हमारे ही विशेष सुखके लिये नहीं हैं और उनको दूसरोंके हितके लिये अर्पण करनेको तत्पर रहनेसे, प्राप्त होती है।

स्वार्थहीन मनुष्य धनवान् होनेपर भी अपने मनमें उस धनसे अपनेको पृथक् समझता है। इस लिये वह उस कटुपन, भय, और चिंतनासे जो लोभी पुरुषोंको अपने धनके हेतु होती है बचा हुआ रहता है। वह अपनी धनकी प्राप्तिको इतनी बड़ी नही समझता कि जिसके नाशसे उसको कष्ट हो। वह केवल निस्स्वार्थताको ही संसारके क्लिष्ट मनुष्योंके लिये उपयोगी समझता है।

अब कहिये कि आनन्दमय मनुष्य कौन है? क्या वह है, जो अपनी सम्पत्तिको बढ़ाता चला जाता है और उससे केवल स्वयं अपनेको हर्ष पहुँचानेका विचार रखता है या वह है जो दूसरोंके सुख और भलाईके हेतु अपने पास जो कुछ हो उसे भी समर्पण करनेको कटिबद्ध है। लोभसे सुख नष्ट हो जाता है और निर्लोभितासे सुखकी प्राप्ति होती है। एक और गुप्त उत्सर्ग जो मनुष्यजातिके दुःखोंको दूर करनेमें बड़ी और प्रबल शक्ति रखता है ईर्ष्याका परित्याग है—अर्थात् दूसरोंके प्रति कटु-विचार, डाह, घृणा और क्रोध न करना। कटु चिन्ताएँ और आनन्द साथ साथ नहीं रह सकते। ईर्ष्या एक ऐसी भयंकर अग्नि है जो मनुष्यके मनमें उत्पन्न होकर उसके शान्ति और सुखके कुसुमोंको जला देती है और मनको नरक बना देती है।

ईर्ष्याके कई नाम हैं और कई भेद हैं, परन्तु सबका तात्पर्य एक ही है, अर्थात् दूसरोंके प्रति द्वेषसे प्रज्ज्वलित विचार रखना। ईर्ष्याके अन्धे अनुयायी इसको धर्म्म कहकर दूसरे धर्मोंके माननेवालोंको

गालियाँ देते हैं, बल्कि उनके साथ संग्राम करते हैं और संसारको दुःख और अश्रुओंसे भरते हैं।

दूसरोंके साथ प्रत्येक प्रकारका वैमनस्य, अरुचि, अशुभचिंतना, कटुवचन—ये सब ईर्ष्या हैं और जहाँ ईर्ष्या है वहाँ असुख है। जब तक मनुष्यके मनमें दूसरोंके लिये क्रोधसंयुक्त विचार उठते रहते हैं तब-तक वह ईर्ष्यापर विजयी नहीं हो सकता। ईर्ष्याका परित्याग उस समय तक परिपूर्ण नहीं माना जा सकता जबतक उन मनुष्योंके लिए भी जो उसको हानि पहुँचाते हैं वह कृपापूर्ण भाव न रक्खे। यदि तुम्हें सत्य आनन्दका अनुभव करना है तो ऐसा ही करना पड़ेगा। ईर्ष्याके कठोर, निर्दय और लोहेके कपाटके अन्दर प्रेमका पवित्र देव प्रतीक्षा किये हुए बैठा है जो उस मनुष्यको दर्शन देकर शान्ति मन्दिरमें ले जावेगा जिसने ईर्ष्या छोड़ दी है।

दूसरे तुम्हारे लिए चाहे सो कहें या करें, परन्तु तुम बुरा मत मानो। ईर्ष्याका उत्तर ईर्ष्यासे न दो। यदि कोई दूसरा तुमसे डाह रखता है तो संभव है कि कभी तुमने भिज्ञता या अनभिज्ञतासे कोई दोष किया होगा या आपसमें समझनेकी भूल रह गई होगी जो थोड़ीसी ही दलील और भलमनसीसे दूर हो सकती है। यदि मनुष्य सदैव 'क्षमाका' कवच पहने रहे तो बहुत अच्छा हो। ईर्ष्या तुच्छ दीन, अन्धी और हीन है। प्रेम महान्, धीमान्, दूरदर्शी और आनन्ददायक है।

उच्च कोटिकी सभ्यता दूसरोंकी बुराई न करना है। उत्तम सुधारक वह है जिसके नेत्र सौन्दर्य और योग्यताको देख सकते हैं और जो अपने खुदके आदर्श जीवनका उदाहरण देकर अपराधियोंको उचित मार्गपर ला सकता है।

सर्व प्रकारकी ईर्ष्याको छोड़ो। प्राणी-प्रेमकी पवित्र वेदीपर ईर्ष्याका बलिदान करो। तुम अपने किसी प्रकारके कष्टका विचार मत करो, परन्तु इसका ध्यान रक्खो कि भविष्यमें किसीको दुःख और क्लेश न पहुँचे। अपने हृदयके किवाड़ खोल दो और उसमेंसे मधुर, महत् और सुन्दर प्रेमरसको बहने दो। प्रत्येक प्राणीके लिए शान्ति और रक्षाके विचार रक्खो—चाहे वह तुम्हारा शत्रु हो, चाहे तुम्हारी बुराई करता हो और चाहे तुमसे ईर्ष्या रखता हो।

अपवित्र वासनाएँ—जैसे आत्मदया, आत्मप्रशंसा, आत्मगौरव—ये सब त्याज्य हैं। ये हृदयके कुरूप और मस्तिष्कके आनन्दशून्य विकार हैं। मनुष्य इन सबको एक एक करके जैसे जैसे छोड़ता जाता है वैसे वैसे ही निर्बलता और खेदसे दूर होता जाता है और पूर्ण तथा अमर आनन्दको समझने और भोगने लगता है।

ऊपर लिखे हुए कई प्रकारके गुप्त बलिदान हृदयके अन्दर होते है। इनका बलिदान हृदयकी पवित्र, गुप्त और अदृष्ट वेदीपर होता है। जब तक मनुष्य ऐसा नही स्वीकार कर ले कि "यह मेरा दोष है, मेरा अपराध है" तब तक उस दोषको वह दूर नही कर सकता। वह जब उसको छोड़ेगा तब उसे उस सत्यका ज्ञान हो जावेगा जो उस दोषसे ढका हुआ था।

स्वर्गीय-आनन्द-रूपी धन मिलता हुआ नेत्रोंसे नही दिखता है। परमार्थके हेतु स्वार्थका मौन बलिदान और अहंकारयुक्त प्रकृतिका क्रम-बद्ध दैनिक उत्सर्ग दृष्टिगत नही होता है। न इसका कोई दिखावटी पुरस्कार मिलता है और न इसकी सर्वसाधारणके सामने करतल ध्वनियोंसे प्रशंसा होती है। यह संसारकी दृष्टिसे बहुत निकट रहने वालोंकी दृष्टिसे भी गुप्त रहता है। क्योंकि शारीरिक नेत्र अहंकारके संहारके आध्यात्मिक सौन्दर्यको नही देख सकते।

परन्तु ऐसा विचार मत करो कि जब इस उत्सर्गको कोई देख नहीं सकता तो फिर इसके करनेहीसे क्या प्रयोजन है? इसकी आनन्दमय किरणें तुम्हें हर्ष देती हैं और इसकी परोपकारकी शक्ति बड़ी विशाल तथा दूर पहुँचनेवाली है। यद्यपि मनुष्य इसको देख नहीं सकते हैं और न समझ सकते हैं परन्तु उनपर इसका नैसर्गिक या स्वाभाविक प्रभाव अवश्य पड़ता है। मनुष्य नहीं जान सकते कि अहंकारको छोड़नेके लिये तुम अपने हृदयमें कैसे कैसे संग्राम कर रहे हो और अपनी आत्मापर कैसी कैसी अमर विजय प्राप्त कर रहे हो; परन्तु तुम्हारे बदले हुए स्वभावको और स्नेहार्द्र नवीन मनको वे अवश्य पहचान जावेंगे। वे बिल्कुल नहीं जानेंगे कि तुम्हारे हृदयमें कितनी प्रबल लड़ाई चल रही है, तुम्हें कितने आघात पहुँचे हैं, उन आघातोंपर तुमने क्या मरहम लगाई है और उससे तुम्हें क्या आराम मिला है. परन्तु इसको वे अवश्य पहचान जावेंगे कि पूर्वकी अपेक्षा तुम अधिक मधुर, भले, शक्तिमान्. शान्त, धीर और पवित्र हो गये हो और उनको तुमसे बहुत सहायता और आराम मिलने लगे हैं। इसकी अपेक्षा तुम्हें और कौनसा अधिकतर प्यारा पुरस्कार मिलेगा? प्रेमके सुगंधयुक्त कार्योंकी मनुष्यकी कल्पित प्रशंसा निर्गन्ध प्रतीत होती है और अहंकारशून्य हृदयकी पवित्र ज्वालामें संसारकी झूठी प्रशंसाएँ जलकर भस्म हो जाती हैं। प्रेम अपना पुरस्कार आप है, अपना हर्ष आप है। इन्द्रियोंके सताये हुए मनुष्यको विश्रामस्थान और अन्तिम रक्षा प्रेमहीसे मिलती है।

अहंकारका परित्याग, पूर्ण ज्ञान और आनन्द किसी एक विशाल और महत्कार्यके सम्पादनसे नहीं, बल्कि सांसारिक साधारण जीवनमें छोटे छोटे उत्सर्गोंके बारंबार सम्पादनसे लब्ध हो सकते हैं। अहंकार

पर सत्यकी विजय शनैः शनैः आत्मोत्सर्गोंके द्वारा होती है । इस प्रकार जो मनुष्य दिन प्रतिदिन अहंकारपर विजयी होता जाता है और जो क्रूर विचारोंका, अपवित्र वासनाओंका और पाप प्रवृत्तियोंका दमन करता जाता है उस मनुष्यकी शक्ति, पवित्रता और बुद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और वह धीरे धीरे सत्य आनन्दके निकट पहुँचता जाता है ।

सत्यका आनन्द और प्रकाश न तुम अपने बाहर खोजो और न कहीं अपनेसे दूरपर । इसको तुम अपने अन्दर ही ढूँढ़ो । तुम अपने कर्त्तव्यपालनके लघु और गुप्त उत्सर्गोंसे इस सत्यानन्दकी पगडंडीको पाओगे ।

सहानुभूति।

जब तुम अपनी आत्माको देखो तो कडी और तीव्र दृष्टिके साथ देखो, परन्तु जब दूसरेको देखो तो अनुकम्पासे देखो। जैसे दलदल भूमिसे काई निकलती है उसी प्रकार साधारण मनुष्योंके मुँहसे गालियाँ और उलहने निकलते है। उन्हें तुम मत निकालो।

—इला व्हीलर विलकाक्स।

पीडित मनुष्यसे म यह नहीं पूछता कि तुम्हारी पीडा कैसी है, बल्कि मे स्वय पीडित बन जाता हूँ और पीडाका अनुभव करने लगता हूँ।

—वाल्ट व्हीटमेन।

हमने जितना आत्म-दमन प्राप्त कर लिया है उतनी ही हम दूसरोंसे सहानुभूति रख सकते हैं। जब तक हम अपनेपर ही दया करते रहें और अपनेसे ही सहानुभूति रखते रहें तबतक दूसरोंका विचार नहीं कर सकते हैं। यदि हम स्वयं अपनी ही प्रशंसा अपनी ही रक्षा, अपनी ही सम्मतिका विचार करें तो दूसरोंके साथ प्रेमका व्यवहार नहीं कर सकते। दूसरोंका विचार करना और अपना विचार भूलना इसीको सहानुभूति कहते हैं।

दूसरोंके साथ सहानुभूति रखनेके लिए पहले हमें उनकी दशा समझनी चाहिये और उनकी दशा समझनेके लिए हमें उनके विषयमें पहलेहीसे बुरे विचार नहीं बॉध लेने चाहियें! जैसे वे है उनको उसी प्रकार देखना चाहिए। हमें दूसरोंकी आन्तरिक दशाके अन्दर प्रविष्ट होना चाहिए और उनके नेत्रोंसे देखकर तथा उनके अनुभवके

अनुक्रमको समझकर उन जैसा हो जाना चाहिये। निःसन्देह ऐसा व्यवहार हम ऐसे मनुष्यके साथ तो कर नहीं सकते जिसकी बुद्धि और अनुभव हमसे बढ़कर है। और न ऐसेके साथ ऐसा व्यवहार कर सकते हैं जिससे हम अपने आपको उन्नत और उच्च समझते हैं। क्योंकि सहानुभूति और स्वार्थ एक स्थानपर स्थिर नही रह सकते। परन्तु हम ऐसे मनुष्योंके साथ सहानुभूति रख सकते हैं जो उन पापों और क्लेशोंमें फँसे हुए हैं जिनसे हमने सफलताके साथ अपने आपको मुक्त कर लिया है। जिस पुरुषकी महत्ता हमसे बढ़-है उसको हम अपनी सहानुभूतिकी छायासे ढक नहीं सकते हैं, परन्तु उसके साथ हम अपनेको इस प्रकार रख सकते हैं कि उसकी महत्तरा सहानुभूतिका सहारा ले सकें और उन पापों और दुःखोंसे मुक्त हो सकें जिनमें हम अब भी फँसे हुए है।

पक्षपात और दुष्कामनायें सहानुभूतिके मार्गकी बड़ी भारी रुकावटें हैं और अहंकार सहानुभूति ग्रहण करनेमें बाधा डालता है। तुम उसके साथ सहानुभूति नही रख सकते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे घृणा है और उस मनुष्यकी सहानुभूति तुम अपने पर रखाना नहीं चाहते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे ईर्ष्या है। जिस मनुष्यसे तुम घिन करते हो उसके जीवनको तुम समझ नही सकते और जिसके प्रति तुम अपनी पाशविक बुद्धिसे ईर्ष्या करते हो उसको भी नही समझ सकते। तुम उसको जैसा वह है वैसा नही समझ सकते, किन्तु जैसे तुमने उसके लिए अपने हृदयमें अपूर्ण और कच्चे विचार बाँध रक्खे हैं उन्हींके अनुसार समझोगे। अपनी अशुद्ध और कारणशून्य सम्मतिके द्वारा तुम केवल उसकी बुराईको देख सकोगे, भलाईको नही।

यदि तुम्हें दूसरोंकी यथार्थता समझनी है तो उनके और अपने बीचमें रुचि या अरुचि, पक्षपात तथा स्वार्थिक वासनाओंको मत आने दो; उनके कार्योंका विरोध न करो और उनके मतों और विश्वासोंको दूषित न ठहराओ। थोड़े समयके लिये तुम अपने आपको पृथक् रखकर उनकी स्थितीको ग्रहण करो। केवल इसी प्रकार तुम उनके साथी होकर उनके जीवन और अनुभवको पूर्णतासे समझोगे और जब किसीको समझ लोगे तो फिर उसको निन्दित और दूषित नही ठहराओगे। मनुष्य एक दूसरेको दूषित और अपराधी बताकर इसी वास्ते दूरसे टालते हैं कि वे एक दूसरेको भले प्रकार समझते नही। और जब तक वे अपने आपपर विजय न प्राप्त कर लें और शुद्ध न बन लें तब तक समझ भी कैसे सकते हैं?

वृद्धि, परिपक्वता, और विस्तारताको जीवन कहते हैं और एक प्रकारसे देखा जाय तो पापी और पुण्यात्मामें विशेष अन्तर नहीं है, केवल श्रेणी और क्रमका अन्तर है। पुण्यात्मा किसी समयमें पापी था और पापी भविष्यमें पुण्यात्मा होगा। पापी बच्चा है और पुण्यात्मा वृद्ध है। जो पापियोंको दुष्ट समझकर उनसे अपने आपको पृथक् रखता है वह उस पुरुषकी नांई है जो छोटे बच्चोंको निर्बोध, अनाज्ञाकारी और खिलौनोंसे खेलनेवाले समझकर उनसे दूर हटता है।

जीवन समान है, परन्तु देखनेमें इसके कई भेद हैं। पुष्प वृक्षसे कोई पृथक् पदार्थ नहीं है। यह उसी वृक्षका एक अंग है बल्कि पत्तीका एक दूसरा भेद है। भाप पानीसे कोई पृथक् वस्तु नही है, वह पानीका रूपान्तर है। पुण्यात्मा परिपक्व और परिणत पापी है।

पापी वही है जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है और अज्ञानताके कारण अशुद्ध कार्यप्रणालीमें रुचि रखती है। पुण्यात्मा वह है जिसकी

बुद्धि परिपक्व है और जिसकी कार्य-प्रणाली शुद्ध और सत्य है। एक पापी दूसरे पापीको दूषित बताता है, क्यों कि दूषित बताना कार्यकी अशुद्ध प्रणाली है। पुण्यात्मा पापीको दूषित नहीं ठहराता, क्योंकि उसको स्मरण रहता है कि एक बार मैं स्वयं भी उसी दशामें था बल्कि उसको अपना लघुभ्राता या मित्र समझकर उसके साथ गंभीर सहानुभूति रखता है, क्योंकि सहानुभूति रखना कार्यकी शुद्ध और उज्ज्वल प्रणाली है।

परिपक्व महात्माको—जो सबसे सहानुभूति रखता है—दूसरोंसे सहानुभूति पानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह पाप और क्लेशको जीत चुका है और आनन्दमें मग्न रहता है। परंतु जो क्लिष्ट हैं उनको सहानुभूतिकी आवश्यकता है और जो पाप करते हैं वे क्लेश पाते हैं। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि प्रत्येक पापके लिये (चाहे वह मानसिक हो या कायिक) उसको अवश्य क्लेश उठाना पड़ेगा तब वह दूसरोंपर दोष लगाना छोड़ देता है और पापसे उत्पन्न हुए उनके क्लेशोंको देखकर उनके साथ सहानुभूति रखना आरम्भ करता है। ऐसा वह तब समझने लगता है जब अपने आपको पवित्र और शुद्ध बना लेता है।

जब मनुष्य अपने मनके विकारोंको शुद्ध कर लेता है, स्वार्थिक इच्छाओंको बदल देता है और अहंकारको पैरके नीचे कुचल देता है तब वह सर्व प्रकारके मानुषिक अनुभवोंको अर्थात् समस्त पाप दुःख, शोक विचार और उद्देशोंको संपूर्णतासे माप लेता है और धर्म्मनीतिको सुप्रकार समझ लेता है। सम्पूण आत्मदमन और सम्पूर्ण ज्ञान सम्पूर्ण सहानुभूति हैं। जो मनुष्य दूसरोंको अपने पवित्र हृदयकी स्वच्छ दृष्टिसे देखता है वह उनपर अवश्य करुणा

करता है, उनको अपने ही देहका भाग समझता है, उनको पतित और पृथक् नहीं किन्तु अपनी ही आत्मा मानता है और उनके विषयमें यह समझता है कि "जैसे मैंने पहले पाप किया था, वैसा ही ये भी कर रहे हैं, जैसे मैंने क्लेश उठाया था, वैसा ये भी उठा रहे हैं और जैसे मैं अन्तमें शान्तिको प्राप्त हुआ वैसे ही ये भी प्राप्त हो जावेंगे।"

यथार्थमें भला और श्रीमान वह है जो प्रबल पक्षपाती नहीं है, जो सबसे सहानुभूति रखता है, जो दूसरोंमें दोष नहीं देखता, जो पापीके उस पापको पहिचान लेता है जिससे वह अज्ञानताके कारण प्रसन्न हो रहा है यह नहीं जानता कि अन्तमें मुझे इस पापके हेतु दुःख और पीड़ा उठानी पड़ेगी।

जितनी दूर मनुष्यकी बुद्धि पहुँचती है उतनी ही दूर वह अपनी सहानुभूति विस्तृत कर सकता है; उससे अगाड़ी नहीं और मनुष्य जितना नम्र और दयावान् होता जाता है उतना ही अधिक वह बुद्धिमान् होता जाता है। सहानुभूति संकुचित होनेसे हृदय संकुचित होता है और जीवन धुँधला तथा कटु होता है। सहानुभूतिको विस्तृत करना जीवनको प्रकाशित और हर्षित करना है और दूसरोंके लिये प्रकाश और आनन्दका मार्ग सुगमतर बनाना है।

दूसरेके साथ सहानुभूति रखना उसके शरीरको अपने शरीरमें धारण करना और उसके साथ समान भाव करना है, क्योंकि स्वार्थ-शून्य प्रेम बहुत शीघ्र ऐक्य उत्पन्न करता है। वह मनुष्य जिसकी सहानुभूति समस्त प्राणधारियोंके साथ है—उन सबमें तन्मय है और संसारके सर्वव्यापक प्रेम, नीति औ बुद्धिको समझता है।

स्वर्ग, शांति और सत्य मनुष्यसे उतने ही दूर हैं जितने दूसरे मनुष्योंको वह अपनी सहानुभूतिसे दूर रखता है। जिस सीमापर उसकी सहानुभुति समाप्त होती है वहींसे अन्धकार, दुःख और हलचल आरम्भ होती है, क्योंकि दूसरोंको अपने प्रेमसे दूर रखना मानों स्वयंको प्रेमके आनन्दसे दूर रखना है और स्वार्थके अन्धेरे कारागारमें पड़े पड़े सुकड़ना है।

जब मनुष्यकी सहानुभूति असीम होती है तब ही उसको सत्यका अनन्त प्रकाश दृष्ट होता है। असीम प्रेममें ही असीम आनन्द मिलता है।

सहानुभूति आनन्द है। इसमें सर्वोत्तम और पवित्र आनन्द दृष्टिगत होता है। सहानुभूति स्वर्गीय है। क्योंकि इसके प्रकाशमें सब तरहके स्वार्थिक विचार नष्ट हो जाते हैं और सबके साथ एक भाव अर्थात् आध्यात्मिक समानताका दृढ संग रखनेसे पवित्र आनन्द मिलता है। जब मनुष्य सहानुभूति रखना छोड़ देता है तो उसका जीवन, दृष्टि और ज्ञान वृथा हो जाता है।

मनुष्य जब तक दूसरोंके प्रति स्वार्थिक विचार नहीं छोड़े तब तक उनके साथ सच्ची सहानुभूति नही रख सकता। जो सच्ची सहानुभूति रखता है वह दूसरोंको जैसे वे हैं वैसा देखनेका प्रयत्न करता है उनके विशेष पाप, वासनाएँ, दुःख, विश्वास, पक्षपात इत्यादिको यथार्थतासे जाननेकी चेष्टा करता है। वह अन्तमें जान लेता है कि वे लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नतिमें किस श्रेणी तक पहुँचे हुए हैं, उनका अनुभव कहाँ तक है और अपनी दशाको अभी बदल सकते हैं या नहीं। वह जान लेता है कि उनका जैसा ज्ञान है उसीके अनुसार वे विचार और कार्य करते हैं। वह यह भी जान लेता है कि उनकी हीन बुद्धि

और ज्ञान अच्छे उदाहरणोंके द्वारा सहायता और उन्नति पा सकते हैं, परन्तु वे तत्क्षण नहीं बदले जा सकते। विवेक और प्रेमके पुष्पोंको बढ़ने और विकसनेके लिये समयकी आवश्यकता है और ईर्ष्या तथा मूर्खताकी बाँझ टहनियाँ शीघ्र नहीं काटी जा सकतीं।

ऐसा मनुष्य उससे परिचित जितने भी मनुष्य हैं उनके प्रत्येकके आभ्यन्तरिक जगतका द्वार ढूँढ़ लेता है, उसको खोलता है, उसके अन्दर चला जाता है और उनके जीवनके पवित्र मन्दिरमें निवास करके उन सबके साथ एकमेक हो जाता है। फिर उसको धिक्कारने क्रोध करने और ईर्ष्या करनेको कोई भी स्थान नहीं दिखता और उसके हृदयमें अधिकतर अनुकम्पा, धैर्य तथा प्रेम रहने लगते हैं।

वह अपने आपको सर्वमय देखता है और समझता है कि सब मनुष्य मेरे दूसरे देह हैं और उनकी प्रकृतियाँ भी मुझ जैसी है, केवल उनमें न्यूनाधिकताका अन्तर है। अगर उसे दूसरोंके हृदयोंमें पाप-प्रवृत्तियाँ काम करती दिखती हैं तो वह अपने हृदयको टटोलता है और देखता है कि ऐसी ही प्रवृत्ति मेरे मनमें भी है परन्तु उसने पापकी ओर झुकना छोड़ दिया है। यदि वह दूसरोंमें पुण्य प्रवृत्ति देखता है तो उसको अपने मनमें भी वैसी ही पुण्यप्रवृत्ति दिखती है जो अभी उतनी शक्ति और परिपक्वताको नहीं पहुँची है।

एकका पाप सबका पाप है और एकका पुण्य सबका पुण्य है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्योंसे पृथक् नहीं है। प्रकृतिका कोई अन्तर नहीं है, केवल स्थितिका या दशाका अन्तर है। यदि कोई मनुष्य अपनेको इस विचारसे किसी दूसरे मनुष्यसे पृथक् समझे कि वह मुझसे अधिक पवित्र है तो उसका ऐसा विचारना उसका अज्ञान ही है। वह पृथक नहीं है। मनुष्यत्व सब एक है। सहा-

नुभूतिके पवित्र मन्दिरमें पुण्यात्मा और पापी मिलते हैं और एक होते हैं।

जीसिस क्राइस्टके विषयमें कहा जाता है कि उसने अखिल संसारके पाप अपने ऊपर लिये--अर्थात् उसने अपनेको पापियोंसे पृथक् नही गिना, बल्कि अपने आपको उन जैसा ही जाना। प्राणीमात्रके साथ उसका ऐसा समभाव उसके जीवनमें स्पष्टतासे सबको दृष्टिगत हुआ। उनसे उन पापियोंको जिनको-लोगोंने उनके भयंकर पापोंके कारण दूर फेंक दिया था--अपनी छातीसे लगाया और उनके साथ घनिष्ट सहानुभूति दिखाई।

सहानुभूतिकी सबसे अधिक आवश्यकता किसको है? पुण्यप्रतापी, ज्ञानी, या महात्माको इसकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञानरहित और अपरिपक्व पापी मनुष्यको ही इसकी आवश्यकता है। जो जितना अधिक पापी है वह उतना ही अधिक दुःखी है, इसलिये उसको सहानुभूतिकी भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है। महात्मा क्राइस्टने कहा है--"मैं पुण्यात्माओंको नहीं बल्कि पापियोंको पश्चात्ताप कराने आया हूँ।" पुण्यात्माओंको तुम्हारी सहानुभूतिकी आवश्यकता नहीं, केवल पापियोंको है। जो दूषित कर्म्मोंसे बहुत समय तक दुःख और क्लेश उठानेके लिये पाप संचय कर रहा है उसीको सहानुभूतिकी आवश्यकता है।

एक प्रकारका पाप कर्म्म करनेवाला दूसरे प्रकारके पाप करनेवालेको बुरा, अपराधी और अधम बताता है। वह यह नहीं सोचता कि मेरे और उसके पाप यद्यपि भिन्न प्रकारके हैं, परन्तु अन्तमें वे हैं पाप। वह यह नहीं देखता कि सर्व प्रकारके पाप एक ही हैं, केवल उनके रूपोंमें अन्तर है। मनुष्य स्वयं जितना पापी है उतना

ही दूसरोंको पापी ठहराता है। जब उसको सद्ज्ञान होता है और वह अपने पापसे मुँह फेरता है तथा उससे बचनेका यत्न करने लगता है, तब दूसरोंको भी पापी बतानेसे रुकने लगता है और उनके साथ सहानुभूति जताने लगता है। परन्तु यह एक अटल सासारिक नियम है कि इन्द्रियोंके वशीभूत पापी मनुष्य आपसमें एक दूसरेको दूषित समझते हैं और घृणा करते हैं। वह मनुष्य जिसको सब बुरा और दोषी बताते हैं और जिससे घृणा करते हैं, यदि उन लोगोंके धिकारनेको अच्छा समझे और विचार करे कि मेरे अपराधोंके कारण वे मुझे बुरा बताते हैं, तो उसकी उन्नति होने लगती है और वह स्वयं दूसरोंकी बुराई करना छोड़ देता है।

जो वास्तवमें सच्चा और भला मनुष्य है, वह दूसरोंकी निन्दा नहीं करता। ऐसा मनुष्य स्वार्थता और अन्धे उद्वेगको दूर रखकर प्रेम और शान्तिके साथ रहता है और सर्व प्रकारके पापोंको और उनसे जो जो दु.ख और क्लेश समुपस्थित होते हैं, उनको जानता है। वह निद्रासे जागकर, ज्ञानका प्रकाश प्राप्तकर और स्वार्थताको छोड़कर सबको जैसे वे हैं वैसे देखता है और उन सबसे पवित्र सहानुभूति रखता है। ऐसे मनुष्यको यदि लोग दोष लगाते हैं, उसकी बुराई करते हैं या उससे घृणा करते हैं, तो वह बुराईके बदले उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता है और विचार करता है कि ये मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण मुझसे घृणा करते हैं, इन्हें अपने बुरे कर्म्मोंका फल भोगना पड़ेगा।

जो तुमसे घृणा करें, आत्मदमन और ज्ञानवृद्धिके द्वारा उनसे स्नेह करना सीखो। उनके बुराई करनेकी ओर दृष्टि न डालो, प्रत्युत अपने मनको टटोलो; कदाचित् तुम्हारे मनमें भी कोई बुरी बात

होगी। यदि तुम अपने दोषों और अपराधोंको समझ लोगे, तो दूसरोंकी निन्दा करना छोड़कर अपने आपको धिक्कारने लगोगे। साधारण प्रकारसे जिसको सहानुभूति कहते हैं वह सहानुभूति नहीं है, किन्तु वह एक प्रकारका शारीरिक स्नेह है। जो हमसे स्नेह करे उससे हम भी स्नेह करें, यह एक मानुषिक स्वभाव और प्रकृति है। परन्तु जो हमसे स्नेह नहीं करें उनसे हम स्नेह करें, यह पवित्र सहानुभूति है।

सहानुभूतिकी आवश्यकता दुःख और क्लेशके कारण है। क्योंकि ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसको दुःख न हुआ हो। दुःखहीसे सहानुभूति उत्पन्न हुई है। एक वर्ष या एक ही जीवनमें मानुषिक हृदय दुःख पाकर पवित्र और स्वच्छ नहीं बन सकता; किन्तु बारंबार जन्म लेकर और दुःख पाकर ही मनुष्य अपने अनुभवोंकी सुनहरी फसलको काटता है और प्रेम और ज्ञानकी परिपक्व और अमल्य फलियाँ प्राप्त करता है। इस प्रकार जन्मजन्मान्तरके पश्चात् वह समझने लगता है और सहानुभूति रखने लगता है। नियमोंका उल्लंघन ही पाप है। मनुष्य अज्ञानतासे नियमोंका उल्लंघन करते हैं। जो पाप है, वही क्लेश है। एक पापके बार बार करनेसे उसका फल अर्थात् क्लेश बारंबार भोगना पड़ता है और बारंबार कष्ट भोगनेसे उस नियमका ज्ञान हो जाता है और जब ज्ञान हो जाता है तो सहानुभूतिके पवित्र और सुन्दर कुसुम खिल उठते हैं।

सहानुभूतिका एक अंश दया है। संसारमें दुःखित और क्लिष्टोंका दुःख दूर करनेके लिए और उनको धैर्य दिलानेके लिए दयाकी बड़ी आवश्यकता है।

दया अशक्तोंके लिए संसारको कोमल बनाती है,
और शक्तिमानोंके लिए ससारको उन्नत बनाती है।

क्रूरता, अकृपा, दोषारोप और क्रोधको हटानेसे दया बढ़ती है। जो मनुष्य किसी पापीको पापका फल पाते देखकर अपने हृदयको कठोर करता है और कहता है कि यह अपने उचित पापोंका फल पा रहा है, वह दया नही कर सकता और न दयाकी मरहमसे दुःखके आघातोंपर पट्टी बाँध सकता है। मनुष्य जब जब प्राणियों-पर कठोरता करता है और उनपर आवश्यक सहानुभूति प्रकट नहीं करता है, तब तब ही वह अपनेको संकीर्ण बनाता, अपने आन-न्दको न्यून करता और क्लेश भोगनेके बीज बोता है।

सहानुभूतिका दूसरा अंश यह है कि अपनी अपेक्षा दूसरोंकी अधिकतर सफलता देखकर हर्ष मनाना और समझना कि उनकी सफलता मेरी ही है। निस्सन्देह वह मनुष्य धन्य है, जो ईर्ष्या, द्वेष और कुढ़नेसे मुक्त है और जो उन लोगोंकि शुभ समाचार सुनकर—जो उसको अपना वैरी समझते हैं—हर्षित होता है।

अपनेसे न्यूनतर और हीनतर प्राणियोंकी रक्षा करना भी सहानु-भूतिका एक अंश है। बेज़बान जानवरोंकी रक्षाके लिए बड़ी गहरी सहानुभूतिकी आवश्यकता है। शक्तिकी शोभा रक्षा करना है, न कि नाश करना। जीवन छोटे जीवोंकी रक्षासे सफल होता है, उनके नाशसे नहीं।

जीवन सब एक है। छोटेसे छोटा प्राणी महत्से महत् प्राणीसे केवल शक्ति और बुद्धिकी न्यूनाधिकतामें भिन्न है, नहीं तो सब प्राणी एक हैं। जब हम दया और रक्षा करते हैं, तो हमारा ऐश्वर्य और हर्ष बढ़ता है और प्रकट होता है। इसके विपरीत जब हम अविवेकता और कठोरतासे प्राणियोंको दुःख और क्लेश पहुँचते हैं, तो हमारा ऐश्वर्य आच्छादित होता और हर्ष बुझ जाता है। एक प्राणीका

दूसरा प्राणी चाहे आहार करे, और एक उद्वेग चाहे दूसरे उद्वेगको नष्ट करे; परन्तु मनुष्यकी सात्त्विक प्रकृति केवल दया, प्रेम, सहानुभूति और स्वार्थशून्य पवित्र कर्मोंसे ही वृद्धिंगत, सुरक्षित और परिपक्व होती है।

दूसरोंके प्रति सहानुभूति रखनेसे हम अपने लिए दूसरोंकी सहानुभूति बढ़ाते हैं। किसीके साथ की हुई सहानुभूति नष्ट नहीं होती। कमीनेसे कमीना प्राणी भी सहानुभूतिके स्वर्गीय स्पर्शसे भला मानेगा, क्यों कि सहानुभूति एक ऐसी विश्वव्यापक भाषा है जिसको सब प्राणी समझते हैं। अमेरिकाके डारटमूर नगरमें एक अत्यंत अत्याचारी अपराधी मनुष्य था, जिसको कितने ही अपराधोंके कारण चालीस वर्षसे भी ऊपर तक कई नगरोंमें कैद रहना पड़ा था। उसको सब लोग बहुत भयानक, कठोर और अन्यायकारी समझते थे और कारागारोंके पहरेदार इत्यादि उसके सुधारकी कोई आशा नही रखते थे। एक दिन जिस कोठरीमें वह रक्खा जाता था, वहाँ एक बेचारा भूखा और अस्वस्थ चूहा आ निकला। उसकी असहाय और दुर्बल दशाको देखकर उस पापीके भी हृदयमें दयाकी विजलीका संचार हो गया और वह अपनी और चूहेकी एक ही प्रकारकी दशा समझकर उसपर सहानुभूति प्रकट करने लगा। उसने उस चूहेको अपने एक बूटमें वासस्थान दे दिया और अपने भोजन और जलमेंसे वह उसको खाने-पीनेके लिए देने लगा। जिस अत्यंत कठोर और दूपित स्थानमें दया नहीं थी, उसी हृदयमें एक चूहेके हेतु सहानुभूतिका स्वर्गीय दीपक जलने लगा। अपनेसे शक्तिहीनोंकी ओर उसकी दया और प्रेम बढ़ने लगा और अपनेसे अधिक शक्तिमानोंसे उसकी घृणा कम होने लगी। वह पहरेदारोंकी पूर्ण आज्ञा मानने लगा। वे लोग इस बातको अद्भुत समझने लगे कि इतना कठोर

मनुष्य इतना नम्र कैसे बन गया। उसकी आकृति भी बदल गई। नेत्रों और होठों आदिकी भयंकरता धीरे धीरे कोमलता और प्रेममें परिणत हो गई। अब वह दूषित और पापी कैदी नहीं रहा, उसका प्रायश्चित्त हो गया और उसका मन पुण्यमें रत हो गया। अन्तमें यह समस्त वृत्तान्त अधिकारियों तक पहुँच गया। उन्होंने उसको स्वतन्त्र कर दिया। जब वह जाने लगा, तो उस चूहेको भी साथ ले गया।

इस प्रकार दूसरोंपर सहानुभूति प्रकट करनेसे उसका भंडार स्वयं हमारे हृदयमें बढ़ता है, और हमारा जीवन सफल होता है। सहानुभूतिके दानसे आनन्दका पुरस्कार मिलता है और सहानुभूतिका दान न देनेसे हमारा आनन्द नष्ट होता है। मनुष्य जितनी अधिक सहानुभूति रखता है, उतना ही वह आदर्श जीवन अर्थात् सत्यानन्दके समीप पहुँचता है। जब उसका हृदय इतना कोमल हो जाता है कि उसमें कोई भी कठोर, कटु या निर्दय विचार उत्पन्न नहीं होता और उसके माधुर्यको न्यून नहीं करता, तब वह मनुष्य सचमुच सत्य आनन्दमें मग्न हो जाता है।

७-क्षमा।

पुराने आघातोंका स्मरण करना मानसिक अन्धकार है और आघात-कर्त्ताओंसे बदला लेनेका विचार करना मानसिक आत्मघात है। क्षमाका अवलम्बन करना मानसिक प्रकाशका आरम्भ है और यही शाति और सुखका भी आरम्भ है। जो दूसरोंके किये हुए अपकार, आघात और कटाक्षोंका चिन्तन करता है, उसके चित्तमें शाति नहीं रहती। जो यह समझता है कि मेरे साथ अमुकने अनुचित व्यवहार किया और जो अपने शत्रुको परास्त करनेके हेतु तरह तरहके प्रयोग ढूँढ़ता है, उसके चित्तको विश्राम नही मिलता। जिस हृदयमें द्वेष और प्रत्यपकार (बदला) की हलचल मची हुई है, उस हृदयमें सुख कैसे वास कर सकता है? क्या वृक्षकी ऐसी टहनीपर जिसमें अग्नि जल रही है पक्षी बैठेगा और गान करेगा? जिस हृदयमें प्रत्यपकारके दहकते हुए विचार हैं, उसमें सुख कैसे वास करेगा? जहाँ ऐसी मूर्खता रहे, वहाँ बुद्धिका प्रवेश और वास नहीं हो सकता।

प्रत्यपकार उसीको मधुर प्रतीत होता है, जो क्षमाके तत्त्वको नहीं पहिचानता। जब क्षमाका माधुर्य चख लिया जाता है, तो प्रत्यपकारका स्वाद अत्यंत कटु और तीक्ष्ण ज्ञात होने लगता है। जो तमोगुणके अन्धकारमें लिप्त हो रहे हैं, उनको प्रत्यपकार सुखदायक प्रतीत

होता है; परन्तु जब क्रोधादिका उद्वेग जाता रहता है और क्षमाको कोमलता प्राप्त हो जाती है, तब ज्ञात होता है कि प्रत्यपकार केवल दुःख उत्पादन करता है।

प्रत्यपकार एक ऐसा तीव्र विष है, जो मस्तिष्कके मर्म्मस्थानोंको चाट जाता है और समस्त सात्त्विक शरीरको विषैला बना देता है। क्रोध एक ऐसा मानसिक ज्वर है, जो मस्तिष्ककी उपयोगी शक्तियोंको जला देता है और बुरा मानना एक ऐसा मानसिक रोग है, जो दया और शुभाकांक्षाके स्वास्थ्यकी जड़ काट देता है। इससे मनुष्योंको बचना चाहिए। क्षमा न करनेकी और बुरा माननेकी प्रकृति दुःख और खेद उत्पन्न करती है और जो इस प्रकृतिको स्वीकृत करके उत्तेजित करता है, दमन करके उसे छोड़ता नहीं है, वह बहुतसे सुखों और आनन्दोंसे खाली रह जाता है तथा प्रकाश और शान्तिसे वंचित रहता है। पत्थरका हृदय रखना दुःख पाना है और प्रकाश तथा विश्रामको खो देना है। कोमलहृदय होना, प्रसन्न रहना और प्रकाश तथा विश्रामकी प्राप्ति करना है। बहुतसे मनुष्योंको ऐसा कहना आश्चर्यजनक प्रतीत होगा कि कठोरहृदय और क्षमा न करनेवाले मनुष्य सबसे अधिक क्लेश उठाते हैं। परन्तु वास्तवमें यह बात बिलकुल सच है। क्योंकि ऐसे लोग आकर्षण शक्तिके नियमानुसार न केवल दूसरोंके हृदयोंमें अपनेसे बदला लेनेका भाव उत्पन्न करते हैं बल्कि स्वयं अपने हृदयकी कठोरतासे भी वे अहोरात्रि क्लेश भोगते हैं। जब जब मनुष्य अपने हृदयको किसी मनुष्यके लिए कठोर करता है, तब तब ही अपने आपके लिए पाँच हानियाँ उत्पन्न करता है:—(१) स्नेहकी हानि, (२) समाजसंग और मेलकी हानि, (३) दुःखित और उद्विग्नमना

रहनेकी हानि, (४) क्रोध और घमंडका उत्पन्न होना, (५) दूसरोंका दिया हुआ दण्ड भोगना। इसी प्रकार मनुष्य जब जब क्षमा करता है तब तब उसको पाँच प्रकारके आनन्द मिलते हैं:—(१) स्नेहका आनन्द, (२) समाजके वृद्धिगत संग और मेलका आनन्द, (३) स्वच्छ और शात मनका आनन्द, (४) क्रोध और घमंडका दमन, (५) दूसरोंकी ओरसे दया और हितैषिताका आनन्द।

असंख्य मनुष्य आज दिन क्षमाशील न होनेके कारण क्रोधाग्निमें जल रहे हैं। जब वे इस प्रकृतिको घटावेंगे और रोकेंगे, तब ही उन्हें ज्ञात होगा कि हम कैसे निर्दय और कठोर स्वामीके दास बने हुए थे। जो अक्षमा जैसे दुष्ट स्वामीके दासत्वको छोड़कर क्षमा जैसे योग्य स्वामीकी अधीनता ग्रहण करेंगे, उनको ज्ञात होगा कि पहली सेवा कितनी दुःखदायक थी और दूसरी सेवा कितनी सुखदायक है।

जब हम संसारके पारस्परिक वैमनस्यको सोचते हैं, तो देखते है कि कितनी ही व्यक्तियाँ, कितने ही समाज, कितने ही पड़ोसी और कितनी ही जातियाँ कितने प्रत्यपकारपर प्रत्यपकार कर रही हैं। इस प्रकारसे कितने हृदय विदीर्ण होते होंगे, कितने अश्रु बहाये जाते होंगे, कितने वियोग और भूलें होती होंगी, इतना ही नही बल्कि अधिक बढ़ने पर कितना रुधिर बहाया जाता है और कितना क्लेश फैलाया जाता है। यदि इन सब बातोंको ध्यानसे सोचें, तो हम दुष्ट होनेके कुत्सित विचारको छोड़ देंगे और किसी भी मनुष्यके दोषके बदलेमें उसपर क्षमा करते देर नहीं लगायेंगे।

जब मनुष्य बदला लेना छोड़कर शान्ति ग्रहण करता है, तो वह अन्धकारसे प्रकाशमें आता है। अक्षमामें इतना अन्धकार और अज्ञान है कि कोई भी मनुष्य जो बुद्धिमान् और ज्ञानी है, उसको ग्रहण नहीं

करेगा। परन्तु कठिनता यह है कि जब तक मनुष्य बदला लेनेकी दुष्ट प्रकृतिको नहीं छोड़ता और सदाचरण ग्रहण नहीं करता, तब तक उस अन्धकारको वह समझ ही नहीं सकता है। मनुष्य अपनी अन्धी और पाप-प्रचुर प्रवृत्तियोंसे अन्धा हो जाता है और धोखा खाता है। सर्व प्रकारकी अक्षमाका परित्याग अहंकार, क्रोध, उन्मत्तता, अहंता और आत्म-बड़ाईका परित्याग है। जब इन कारणोंको जिनसे उसको बदला लेनेकी इच्छा उत्पन्न होती है वह त्याग देता है, तो उच्चतर जीवन, अधिकतर विवेक और पवित्र प्रकाश जो पहले अहंकार और तमसे ढके हुए थे उसके निकट भले प्रकार प्रकट हो जाते हैं।

छोटे छोटे उपालंभ, कटाक्ष और विकार दीखनेमें तो तीव्र द्वेष और कठोर प्रत्यपकारसे कम हैं. परन्तु ये भी मनुष्यके चरित्र और आत्माको संकुचित बनाते हैं। ये सब अहंकार और आत्मश्लाघासे उत्पन्न होते हैं। जो अहंता और आत्म-बड़ाईसे अन्धा हो रहा है, वह दूसरोंके कहने सुननेका बहुत बुरा मानता है। बस यह समझना चाहिए कि जितना अधिक अहंकार मनुष्यमें बढ़ा हुआ होता है, उतना ही वह अधिक बुरा मानता और दुष्ट रहता है। इस प्रकार वारम्बार छोटी छोटी बातोंमें बुरा माननेसे उसकी प्रकृतिमें ईर्ष्या बहुत बढ़ जाती है और उससे अन्धकार क्लेश और भ्रम पैदा होते हैं।

बुरा मत मानो और अपने दिलको मत दुखाओ, अर्थात् घमंड या अहंकारको छोड़ो। दूसरोंके हृदयोंको कष्ट न पहुँचाओ और उनको दुष्ट मत होने दो, अर्थात् दूसरोंपर क्षमा और दया रक्खो।

अहंकार और घमंडको पूर्णतः छोड़ देना बड़ी टेढ़ी खीर है? परन्तु यह एक शुभ कार्य है। बुरा न माननेका धीरे धीरे अभ्यास करने और अपने विचारों और कार्योंको शनैः शनैः समझने और

स्वच्छ करनेसे यह कार्य पार पड़ जाता है। जैसे जैसे घमंड और अहंकार घटता जाता है, वैसे वैसे ही, उसी क्रमसे, सहनशीलता और शान्ति बढ़ती जाती है।

स्वयं बुरा न मानना और दूसरोंका हृदय न दुखाना, ये दोनों ही बातें साथ साथ चलती हैं। जब एक मनुष्य दूसरोंके कार्योंसे बुरा नहीं मानता है, तो यह स्पष्ट ही है कि वह उनपर दया करता है। ऐसा मनुष्य जो कुछ कहेगा और करेगा उससे दूसरोंके हृदयोंमें दया और प्रेम उत्पन्न होगा न कि क्षोभ और विषाद। दूसरे जो कुछ उसके लिए करेंगे, उसका उसको कुछ भी भय नहीं होगा; क्योंकि जो किसीको दुःख नहीं देता उसको भय क्यों हो? परन्तु वह मनुष्य जिसमें सहनशीलता नहीं है और जो सत्य या असत्य, सभी तरहके उपालंभ और दोषारोप इत्यादिका बदला लेता है, वह दूसरोंके विषयमें किसी प्रकारका विचार नहीं करता, क्यों कि वह अपनेको प्रथम समझता है और इसी प्रकार धीरे धीरे अपने शत्रुओंकी संख्या बढ़ाता चला जाता है। उसको भय भी रहने लगता है, क्योंकि जब वह दूसरोंके लिए बुराई करता है, तो उसको यह चिन्ता रहती है कि वे भी उसके साथ बुराई करेंगे। जो दूसरोंको आघात पहुँचानेका प्रयत्न करता है, उसको दूसरोंका भय अवश्य रहता है।

"द्वेष द्वेषसे नहीं घटता, किन्तु द्वेष न करनेसे घटता है।" इस नीतिको अपने शिष्यको समझानेके लिए एक गुरुने राजकुमार दीर्घायुकी एक बहुत सुन्दर कहानी कही है:—काशीके शक्तिमान् और प्रतापी राजा ब्रह्मदत्तने कौशल देशके दीर्वैति राजापर उसका राज्य छीननेके लिए आक्रमण किया। दीर्वैतिका राज्य

बड़ा नहीं था, उसने सोचा कि ब्रह्मदत्तका सामना करना और लड़ना मेरे लिए असम्भव है। इस लिए अपने राज्यको शत्रुके हाथमें छोड़कर वह भाग गया। कुछ काल तक वह भेष बदले हुए स्थान स्थानपर फिरता रहा और अन्तमें अपनी स्त्रीके साथ एक कारीगरके झोपड़ेमें बस गया। यहाँ उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दीर्घायु रक्खा गया।

उधर राजा ब्रह्मदत्तने मनमें विचारा कि दीर्घैतिका राज्य मैंने छीन लिया, इससे आश्चर्य नहीं कि वह समय पाकर धोखेसे मेरे प्राण ले ले, इसलिए उसको मार डालना चाहिए। यह ठानकर उसने दीर्घैतिका वासस्थान ढूँढ़ना प्रारम्भ किया।

बहुत समय व्यतीत हो गया। दीर्घैतिने अपने पुत्र दीर्घायुको पढ़ाया लिखाया जिससे वह पंडित, चतुर और बुद्धिमान् हो गया।

दुर्भाग्यसे दीर्घैतिका निवासस्थान प्रकट हो गया और उसने ऐसा सोचकर कि यदि ब्रह्मदत्तको हमारा पता लग गया, तो वह हम तीनोंको मार डालेगा अपने राजकुमारको किसी दूसरे स्थानपर भेजकर छिपा दिया। थोड़े ही समयके पश्चात् दीर्घैति ब्रह्मदत्तके हाथ पड़ गया और वह और उसकी रानी खड्गकी भेट चढ़ा दिये गये।

ब्रह्मदत्तने विचार किया कि दीर्घैति और उसकी स्त्रीको तो संसारसे हटा दिया, परन्तु दीर्घायु अभी जीवित है और वह अवश्य किसी न किसी प्रकार मुझे वध करनेकी चेष्टा करेगा, इससे उसको रात दिन बहुत भय और क्लेश रहने लगा।

दीर्घायुने अपने मा-बापके मारे जानेका समाचार पानेके पश्चात् अपना नाम और वेश बदल दिया और वह ब्रह्मदत्तकी घुड़सालमें नौकर

हो गया। दीर्घायु अपने सद्व्यवहार और योग्यतासे सबका प्यारा बन गया और धीरे धीरे उसके गुणोंकी प्रशंसा राजा ब्रह्मदत्तके कानों तक पहुँच गई। राजाने उसको अपने पास बुलाया और उसकी योग्यतापर वह इतना मुग्ध हो गया कि उसने उसे अपने ही पास रख लिया। नये पदको पाकर दीर्घायुने अपने स्वामीकी ऐसी प्रेम, श्रद्धा और भक्तिसे सेवा की कि वह राजाका पूर्ण विश्वासपात्र हो गया।

एक दिन राजा आखेट खेलते खेलते बहुत दूर चले गये। वहाँ कुछ ऐसी घटना हुई कि दीर्घायुके अतिरिक्त वे अपने सब सेवक-वर्गसे पृथक् हो गये। दौड़ धूपसे राजा इतना परिश्रान्त हो गया था कि दीर्घायुकी गोदका सिराना बनाकर सो गया।

दीर्घायुने सोचा—इस राजाने मुझे बहुत हानि पहुँचाई है। इसने मेरे माता-पिताका राज्य छीना और उनके प्राण लिये। इस समय यह बिलकुल मेरे हाथोंमें है। ऐसा विचार कर उसने तलवारको म्यानसे बाहर निकाला; परन्तु उस समय उसे अपने पिताकी दी हुई शिक्षा स्मरण हो आई कि बदला कभी नहीं लेना चाहिए—सदैव क्षमा करना चाहिए। बस, उसका रोष मारा गया और उसने तलवारको पुनः म्यानमें रख लिया।

अन्तमें राजा निद्रासे चौंककर जाग पड़ा। दीर्घायुने पूछा कि "आप भयभीतसे कैसे दिखते हैं?" राजाने उत्तर दिया कि "मुझे सुप्रकार निद्रा नहीं आती है, क्योंकि मुझे बहुधा स्वप्न आया करते हैं कि मैं दीर्घायुके हाथमें हूँ और वह मुझे मारनेवाला है। यहाँ भी सोते हुए मुझे वही स्वप्न और भी प्रबलतासे आया, जिससे मुझे बहुत भय हो रहा है।"

यह सुनकर राजकुमारने तलवार निकाली और कहा—"राजकुमार दीर्घायु मैं ही हूँ और आप इस समय मेरे अधिकारमें हैं। आपसे बदला लेनेका समय आ गया है।"

राजा अपने घुटनोंके बल दीर्घायुके सम्मुख बैठकर गिड़गिड़ाने लगा और उससे अपना जीव-दान माँगने लगा। दीर्घायुने उत्तरमें कहा—"राजन्, आप मेरे प्राण बचाइए। क्योंकि आप चिरकालसे मुझे ढूँढनेमें लगे हुए थे कि मैं कहीं मिल जाऊं, तो आप मुझे मार डालें। आज मैं आपको मिल गया हूँ। अब मैं आपसे अपने जीवनकी भिक्षा माँगता हूँ।"

ब्रह्मदत्त और दीर्घायुने परस्पर जीव-दान दिया। प्रेमसे गद्गद होकर दोनों गले मिले और दोनोंने शपथ कर ली कि आपसमें एक दूसरेको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचावेंगे। दीर्घायुकी योग्यता और सहन-शीलतासे ब्रह्मदत्त इतना परास्त हो गया कि उसने अपनी कन्या दीर्घायुको व्याह दी और उसको उसके पिताका राज्य भी वापस सौंप दिया।

इस प्रकार द्वेष अद्वेषसे अर्थात् क्षान्तिसे परास्त होता है। प्रत्यपकारकी अपेक्षा क्षान्ति अधिक सुन्दर, मधुर और भारी है। त्यागसे प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। जो इसका अभ्यास करता है, वह शनैः शनैः उस आनन्दको प्राप्त होता है, जहाँ अहंता, अभिमान, द्वेष और प्रत्यपकार दूर हो जाते हैं और स्थायी अगाध शुभा-कांक्षा तथा शान्ति वास करती है। इस शान्त और मौन आनन्दमें क्षमा भी नहीं रहती और उसकी आवश्यकता भी नहीं होती। क्योंकि जो मनुष्य इस आनन्द-स्थितिको प्राप्त हो जाता है, वह दूसरोंके दोष या

अपराधसे दुष्ट नहीं होता, किन्तु उनकी अज्ञानता और भ्रमको समझ-कर उनपर दया करने लगता है । क्षमा करना उसी समय तक आवश्यक है, जब तक स्वभावमें दुष्ट होने और प्रत्यपकार करनेकी वासना भरी रहती है । समस्त प्राणियोंपर समप्रेम रखना ही आदर्श नियम, आदर्श जीवन और आदर्श स्थिति है । स्वर्गीय प्रेमके निर्दोष मन्दिरके अन्दर जानेके कई द्वारोंमेंसे क्षान्ति भी एक मुख्य द्वार है—एक मुख्य पगडंडी है ।

८–दोष न देखना ।

क्षान्तिका किसी श्रेणी तक अभ्यास होनेके पश्चात् मस्तिष्कमें वास्तविक बुरे और भलेका ज्ञान हो जाता है और मनुष्य समझने लगता है कि हृदयमें विचार और उद्देश्य किस प्रकार उत्पन्न होते, किस प्रकार बढ़ते और फिर किस प्रकार कार्योंमें परिणत होते हैं। ऐसा होनेसे मस्तिष्कमें एक प्रकारका नवीन विकास होता है और जीवन अधिकतर श्रेष्ठ, उन्नत और पवित्र होने लगता है। इस श्रेणीको प्राप्त करके मनुष्य यह देखने लगता है कि दूसरोंके कार्योंसे या *कहने सुननेसे रुष्ट होने और बुरा माननेकी आवश्यकता नहीं है;* क्योंकि गत समयमें वह रुष्ट होता था सो अज्ञानताके कारण होता था, परन्तु अब उसके मनमें कुछ ऐसे विचार आने लगते हैं कि क्यों बारम्बार बदला लिया जाय और क्यों बारम्बार क्षमा दी जाय? दूसरोंपर क्रोध किया ही क्यों जाय कि जिसके लिए फिर पश्चात्ताप किया जाय और क्षमा माँगनी पड़े? क्रोधको लौटा लेने और बुरा मानना लौटा देनेहीको क्षमा कहते हैं। यदि क्रोध और रोष अच्छे और अनिवार्य हैं, तो उनके लिए पश्चात्ताप क्यों किया जाता है और क्षमा क्यों दी जाती है? कडुवे भावोंको दूर करना और क्षमा देना यदि सुन्दर, मधुर और शान्त प्रतीत होता है, तो बिल्कुल ही क्रोध न

करना, और बिल्कुल ही बुरा न मानना और भी सुन्दर, और भी प्रिय, और भी मधुर होगा। यदि क्रोध और रोषका लेश भी न रहे, तो क्षमाकी फिर क्या आवश्यकता है? क्षमा तब आवश्यक है जब किसीके वचन या कार्यसे बुरा माना जाय; परन्तु जब क्रोध और रोष मेरे स्वभावहीमें न रहेंगे, तो क्षमा किस लिए करूँगा? यदि किसी मनुष्यने मेरा बुरा किया है और मैं उसे बदला लेनेके लिए बुरा कहूँ, तो क्या यह मेरा अपराध नहीं है? क्या अपराधसे अपराध ठीक हो सकता है? क्या एक दोषसे दूसरा दोष दूर हो सकता है? यह भी देखना चाहिए कि किसीने अपराध करके मुझे हानि पहुँचाई है या अपने आपको? मेरा दोष मुझे हानि पहुँचा रहा है या उसका दोष? मैं क्रुद्ध क्यों होऊँ? मैं रुष्ट क्यों होऊँ? प्रत्यपकार क्यों करूँ? कडुवे विचार क्यों बाँधूँ? यदि मैं ऐसा करता हूँ, तो केवल अपने अहंकार और स्वार्थके कारण करता हूँ, अन्यथा और कोई कारण तो नहीं है। मेरा अन्धा पशुत्व जाग कर मेरे अच्छे स्वभावको दबा देता है और मैं दुष्ट होकर प्रत्यपकारपर कमर बाँध लेता हूँ। यह देखकर कि मेरा अहंकार और अपवित्र तथा अशान्त क्रोध ही ऐसा है जिसके कारण मुझे दूसरेका वचन या कार्य चोट पहुँचाता है, यदि मैं उसके अपराधका दंड देनेके लिए उद्यत न होकर अपने दोषको ही दूर करूँ, तो कितना अच्छा हो। दूसरोंके दोष ढूँढ़कर उनसे बदला लेनेके लिए उद्यत होनेकी अपेक्षा यदि मैं अपने अहंकार, आत्मश्लाघा और क्रोधको त्याग दूँ, तो कितना अच्छा हो, फिर मुझे तो किसी प्रकारका क्लेश ही न रहे।

इस प्रकार अपने हृदयमें प्रश्न करने और उनका समाधान करनेसे मनुष्यके विचार कोमल और चरित्र क्रोधशून्य होने लगता है, उसका

उद्वेग घट जाता है और अज्ञानता तथा अन्धकार जिनके कारण उसको रोष और क्रोध होते थे दूर हो जाते हैं। अन्तमें वह उस आनन्दकी स्थितिको प्राप्त हो जाता है, जब वह दूसरोंमें बुराई नहीं देखता और सब मनुष्योंके प्रति शुभाकांक्षा, प्रेम और शांति रखने लगता है। यह नहीं कि वह अज्ञानता और मूर्खताको देखना छोड़ देता है, यह नहीं कि वह कष्ट, दुःख और क्लेश देखनेसे रह जाता है, यह नहीं कि वह बुरे और भले, पवित्र और अपवित्र कार्योंमें अन्तर देखने और समझनेसे रह जाता है; किन्तु क्रोध और पक्षपातको छोड़ देनेसे ज्ञानके पूर्ण और स्वच्छ प्रकाशके द्वारा उपर्युक्त विषयोंकी वास्तविकताको जान जाता है और दूसरोंमें उसको ऐसी कोई बुरी शक्ति दृष्टिगत नहीं होती जो उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचा सके, जिसका उसको प्रतिरोध करना पड़े, जिसको नष्ट करनेकी उसे चेष्टा करनी पड़े और जिससे बचनेके लिए उसको अपनी रक्षा करनी आवश्यक हो। बुराईको अपने हृदयमेंसे बाहर निकालकर वह उसे ऐसी अच्छी तरह समझने लग जाता है कि उसे द्वेष, भय और रोष करनेके योग्य नहीं किन्तु विचार, अनुकम्पा और प्रेम करनेके योग्य समझता है।

महाकवि शेक्सपीयर अपने एक नाटकमें कहते हैं कि "अज्ञानताके अतिरिक्त और कोई अन्धकार नहीं है।" जितनी बुराई है, सब अज्ञानता और मनका गम्भीर तिमिर है। अपने मनसे पापको दूर करना अन्धकारसे प्रकाशमें आना है। भलाई न होनेका नाम बुराई है, और प्रकाश न होनेका नाम अँधेरा है। इसी प्रकार क्रोध और रोष न उत्पन्न होनेका नाम है ज्ञान। पृथ्वीपर जब रात्रि

आती है, तो ऐसा कौन मूर्ख है जो अन्धेरेपर हँसे ? इसी प्रकार ज्ञानी, मनुष्योंके उस आध्यात्मिक अन्धकारको जो पापके रूपमें प्रकट होता है बुरा नहीं कहता, यद्यपि शान्त अनुरोधसे वह उन मनुष्योंको यह शिक्षा देना उचित समझता है कि प्रकाश कहाँ स्थिर है।

बुराई दो प्रकारकी है। एक बुराई वह है, जो भले बुरेकी पहिचान बिना की जाती है। यह अज्ञानताके कारण उत्पन्न होती है। दूसरी वह है जिसको करनेवाला जानता है कि यह बुराई है, इसको नहीं करनी चाहिए। परन्तु बुराई चाहे जान कर की जाय या बिना जाने, इसकी उत्पत्ति अज्ञानता है, अर्थात् बुराई करनेवाला चाहे बुराईको जान कर करे या बिना जाने, परन्तु वह उस बुराईके वास्तविक अस्तित्व और मर्म्मको नहीं पहिचानता है—उसके करनेसे भविष्यमें क्या क्या खोटे परिणाम होंगे, यह नहीं जानता है। यदि उसे इसका ज्ञान होता तो वह बुराई करता ही नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि अज्ञानके कारण ही सारे दोष होते हैं।

इसपर यह प्रश्न होता है कि जब मनुष्य इस बातका अनुभव करता है, तब वह ऐसा जान बूझकर क्यों करता रहता है ? जब वह जानता है कि ऐसा करना दोषसंयुक्त है तब अज्ञानता कहाँ रही ?

मनुष्य दोषोंको जानते हुए भी करता रहता है, इसका कारण यह है कि उसको उनका ज्ञान तो होता है परन्तु पूर्ण ज्ञान नहीं होता। कुछ लोगोंके कहने सुननेसे और कुछ अन्तःकरणकी ताड़नासे वह जानता है कि मुझे अमुक दोष नहीं करना चाहिये, परन्तु जो कुछ कर रहा है उसको पूर्णतासे नहीं जानता है कि मै क्या कर रहा हूँ। वह जानता है कि अमुक कार्यके करनेसे मुझे तत्कालीन आह्लाद प्राप्त

होता है, इस लिए अपने अन्तःकरणके कष्ट पाते हुए भी उस आह्लादके हेतु वह उस कार्यको करता रहता है। उसने मान लिया है कि वह आह्लाद अच्छा और प्राप्त करनेके योग्य है, इस लिए उसको भोगना चाहिए। वह नहीं जानता कि आह्लाद और कष्ट एक है और विना कष्टके सुखको बटोरना चाहता है। जिस नियमके अनुसार मानुषिक कार्य चलते हैं, उससे वह अनभिज्ञ है। वह कभी विचार नहीं करता कि जितना दुःख मुझे होता है, सब मेरे ही दुष्कर्मोंके कारण होता है। उसकी समझमें जो कुछ दुःख और क्लेश होता है, सब दूसरोंके दुष्कर्मोंसे होता है या वह यों समझता है कि दुःख और सुख सब ईश्वरके रचे हुए है, उनके खोजने और समझनेकी आवश्यकता नहीं है। वह केवल सुख ढूंढ़ता है और उन कार्योंको करता है जिनको वह अपनेको सुख देनेवाला समझता है, परन्तु उनमें क्या क्या बुरे फल मिलेंगे, इस बातसे वह निपट अनभिज्ञ रहता है।

एक वार एक मनुष्यने जिसको एक बुरा व्यसन लगा हुआ था मुझसे कहा—" मैं जानता हूँ कि यह व्यसन बुरा है और मुझे लाभ नहीं किन्तु हानि पहुँचाता है।" मैंने पूछा कि " जब आप जानते हैं कि मैं जो कर रहा हूँ वह बुरा और हानिकारक है, तब उसे क्यों करते हैं ? " इसपर उसने उत्तर दिया " इसमें मुझे आनन्द मिलता है, इस लिए करता हूँ। " वह मनुष्य यथार्थमें नहीं जानता था कि वह व्यसन बुरा है। उसने केवल दूसरोंसे सुन रक्खा था और उसका यह विचार मात्र था कि यह बुरा व्यसन है, परन्तु वास्तवमें वह उसको अच्छा और अपने हर्षको बढ़ानेवाला समझता था और इसी हेतु वह उसको छोड़ता नहीं था। जब मनुष्य अनुभवसे जान जाता है कि अमुक वस्तु बुरी है और जब जब मैं उसको

करता हूँ तब तब ही मेरे शरीर या मन या दोनोंको हानि पहुँचती है; जब वस्तुके मर्मको वह इतनी पूर्णताके साथ समझ लेता है कि उसमें जितने दोष हैं या उसके जितने बुरे फल होंगे उनको वह रत्ती रत्ती पहिचान ले, तो फिर वह उसको केवल छोड़ ही नही देता है किन्तु उसकी इच्छा भी उस वस्तुके लिए नही होती है और उसमें जो पहले आनन्द प्रतीत होता था, वह उसे दुःखदायक प्रतीत होने लगता है । क्या सर्पके रंगसे मुग्ध होकर कोई उसको जेबमें रख लेगा और रंगहीपर रीझकर कोई मनुष्य यह नही देखगा कि इस सौन्दर्यके नीचे हालाहल विष विद्यमान् है ? इसी प्रकार जब मनुष्यको यह ज्ञान भलीभाँति हो जाता है कि बुरे कार्योंसे भविष्यमें मुझे क्लेश और हानि पहुँचेगी, तो वह उनके उस तात्कालिक सौन्दर्य और आह्लादको जिसके लिए पहले उसको इतनी लालसा थी मिट्टीके तुल्य समझने लगता है । बुरे कार्योंका मर्म प्रकट होनेपर वह उनको स्पष्टताके साथ देखने लगता है ।

एक युवक मेरी जान-पहिचानका था । वह पादरी (धर्मोपदेशक) था और व्यापार करता था । उसने मुझसे कहा कि " व्यापार और व्यवसायके लिए झूठ बोलना और धोखा देना बहुत आवश्यक है । इनके बिना व्यापारीका निस्सन्देह नाश हो जाता है । मै यह जानता हूँ कि झूठ बोलना बुरा है, परन्तु जब तक व्यापार करना है तब तक मुझे झूठ बोलना पड़ेगा ।" जब मैंने इस बातकी पूछ-ताछ की कि " आपने कभी सचाई और ईमानदारीसे काम किया भी है जो व्यापारका श्रेष्ठ मार्ग है ?" तो उसने साफ उत्तर दिया कि " व्यापारकी इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी अच्छी रीति है ही नहीं ।" क्या इस नवयुवकको मालूम था कि झूठ बोलना बुरा है ? नहीं, केवल लोगोंके मुँहसे

वार वार सुनकर वह साधारण प्रकारसे जानता था कि झूठ बोलना बुरा है, परन्तु इसको यथार्थमें समझता नहीं था। उसको शिक्षा यह मिली थी कि झूठ बोलना बुरा है और उसका अन्तःकरण इसकी साक्षी देता था, परन्तु उसका यह विश्वास जमा हुआ था कि झूठ बोलनेसे लाभ, उन्नति और सुख प्राप्त होता है और खरेपन और सच बोलनेसे हानि, दरिद्रता और दुःख। तात्पर्य यह है कि अपने हृदयमें वह झूठको उचित और सत्यको अनुचित समझता था। उसको झूठ बोलनेके इस वास्तविक मर्म्मका कोई ज्ञान नहीं था कि इससे आचरण, उपयोग, प्रभाव, आनन्द, यश और व्यवहारिक लाभको बहुत हानि पहुँचती है। ऐसा मनुष्य जब दूसरोंके सुखका ध्यान रखने लगता है और व्यापारमें झूठ न बोलनेसे जिस आर्थिक हानिके उठानेका डर रहता है उसे सहन कर लेता है, तब ही उसको उस वास्तविक ज्ञानकी प्राप्ति होती है। उस समय उसको सच्चा आनन्द मिलता है और वह जान जाता है कि इतने दिनों तक मै केवल अस्थिर सुखके हेतु दूसरोंको धोखा देनेकी अपेक्षा स्वयंको अधिक धोखा दे रहा था और अज्ञानता तथा भ्रमके घोर अन्धकारमें निमग्न हो रहा था।

उपर्युक्त दोनों उदाहरण हमारे उन पाठकोंके सामने-जो सत्यको खोजते हैं परन्तु सन्देह और भ्रमके जालमें ग्रसित हैं—इस बातको और भी स्पष्टतासे प्रकट करेंगे कि समस्त पाप या बुराईका कारण अज्ञानता है और इस लिए पापियोंके प्रति घृणाका नहीं किन्तु प्रेमका व्यवहार करना चाहिए। जो व्यवस्था असत्य-भाषणकी है, वही समस्त दूषित प्रकृतियों और समस्त पापोंकी—लोभ, घृणा, ईर्षा, द्रोह, अभिमान, अहंकार, आत्मश्लाघा, स्वार्थ इत्यादिकी—है; इन सबका वही एक कारण ज्ञानकी शून्यता और हृदयमें सत्य प्रकाशकी अनुपस्थिति अर्थात् आध्यात्मिक अन्धकार है।

जब मनुष्य अपने हृदयकी दूषित कालिमाको दूर करके बुराईका वास्तविक और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह बुराईको इतनी घृणित नहीं बता सकता और बुराई करनेवालेको कोमलता और दयासे देखने लगता है।

दोष देखनेसे हमें एक दूसरे दोषमें फँसना पड़ता है। संसारमें प्रत्येक व्यक्तिको स्वतन्त्रता है, अर्थात् प्रत्येक मनुष्यका यह स्वत्व है कि जैसी उसकी रुचि हो वह वैसा ही कार्य करे। दूसरोंमें दोष देखनेके साथ साथ मनुष्यकी यह इच्छा उत्कट हो जाती है कि मै उनके विचारों और कार्योंको अपने जैसा बना लूँ। यह मनुष्यका एक साधारण भ्रम है कि जो कुछ वह विचारता, मानता और करता है, वही उचित और योग्य है और दूसरे जो करते है वह निपट दोषयुक्त है और इसलिए उनको घृणा और द्वेषसे देखता है और उनपर आक्रमण करता है। बस, इसी भ्रान्तिके कारण धर्म्मसम्प्रदायोंके पारस्परिक झगड़े हुआ करते है। ईसाई अन्य धर्म्मावलम्बियोंको बहुत दुष्ट समझते हैं और दूसरे सम्प्रदायवाले हिन्दू मुसलमान आदि ईसाइयोंको बुरा समझते है कि ये लोग संसारको दूषित सिद्धान्त सिखलाकर बड़ी भयंकर हानि पहुँचा रहे है। सच तो यह है कि न ईसाई बुरे है और न दूसरे धर्म्मवाले और न कोई बुराई करता है। प्रत्येक अपने अपने मार्गपर चलता है और उसी मार्गको ग्रहण करता है जिसके लिए उसको यह जँच गया है कि वह उचित और सत्य है।

यदि हम शान्त भावसे सोचें कि संसारके भिन्न भिन्न धर्म्मसम्प्रदाय परस्पर एक दूसरेको बुरा बताते और अपने धर्म्मको उचित और अच्छा मानते हैं, तो हमें स्पष्टतया ज्ञात हो जायगा कि यह आपसकी थुक्का-फजीती अज्ञानता और भ्रमसे होती है। इस बातपर

भले प्रकार ध्यान दिया जावे, तो मनुष्यकी शान्ति, अनुकम्पा, बुद्धि और गम्भीरता बहुत कुछ बढ़ सकती है।

सच्चा सज्जन पुरुष सब बातोंमें भलाई देखता है बुराई नहीं, क्योंकि उसने दूसरोंके विचार और कार्योंको अपने जैसे करनेकी मूर्ख लालसाको त्याग दिया है और वह जानने लग गया है कि मनुष्योंके स्वभाव नाना प्रकारके होते हैं और जैसी और जितनी उनकी आध्यात्मिक योग्यता बढ गई है वैसे और उतने ही उनके विचार और कार्य होते हैं। उसने ईर्ष्या, दोषदृष्टि, अहंकार और पक्षपातको त्यागकर ज्ञानका प्रकाश प्राप्त कर लिया है। वह देखता है कि पवित्रता, प्रेम, अनुकम्पा, सुशीलता, धैर्य, विनय और निःस्वार्थता ज्ञानका प्रकाश है और अपवित्रता, ईर्ष्या, क्रूरता, क्रोध, उद्वेग, अहंकार और स्वार्थ—ये सब अन्धकार और अज्ञानताके प्रतिबिम्ब है। मनुष्य चाहे अज्ञानके अन्धेरेमें हों, चाहे ज्ञानके प्रकाशमें हों, वे एक है और वही करते हैं जिसको आवश्यक समझते हैं। बुद्धिमान् जन इस बातको समझता है और इसी लिए वह दूसरोंपर दोषारोप नहीं करता।

प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृतिसे अनुकूल और अपने अच्छे और बुरेके ज्ञानके अनुसार कार्य करता और अपने अनुभूत कर्मोंका फल भोगता है। अपनी इच्छानुकूल सोचना और करना—यह प्रत्येक मनुष्यका एक सर्वोपरि स्वत्व है। यदि वह स्वार्थवश अपने ही तात्कालिक सुखको प्राप्त करनेके लिए विचार और कार्य्य करे और दूसरोंके सुखपर ध्यान न दे, तो कार्य्य और कारणके स्थिर नियमके अनुसार अपने ऊपर ऐसा क्लेश लावेगा कि जिसके उपस्थित होनेपर उसको ठहरकर विचार करना पड़ेगा और तब उसको श्रेष्ठतर मार्ग मिल जावेगा। अनुभवसे बढ़कर मनुष्यका और कोई गुरु नहीं है और अज्ञानके

कारण जो कष्ट प्राप्त होता है उससे बढ़कर शिक्षाप्रद और पवित्रकारक दण्ड नहीं है। स्वार्थी मनुष्य अज्ञानी है। वह अपना मार्ग आप स्वीकृत करता है, परन्तु वह ऐसा मार्ग है जो पहले दुःखको और फिर दुःखसे ज्ञान और आनन्दको प्राप्त कराता है। भला मनुष्य बुद्धिमान् है। वह भी अपना मार्ग आप स्वीकार करता है; परन्तु अज्ञान और दुःखकी मंजिल समाप्त करके और ज्ञान तथा आनन्दको प्राप्त करके ज्ञानके सम्पूर्ण प्रकाशमे स्वीकार करता है।

मनुष्य दूसरोंमें दोष न देखनेके मर्मको तब पहचानता है, जब वह दूसरोंके विषयमें ऐसी सम्मति देता है जिसमें अपनी स्वयंकी इच्छाओंकी बास नहीं रहने देता है और उनके कार्य्योंको वह अपने ढंगसे नही प्रत्युत उन करनेवालोंके आदर्शसे देखता है। दूसरोंमें बुराइयों दृष्टिगत होती है कि मनुष्य अपने अपने आदर्श बना लेते हैं और चाहते है कि सब लोग हमारे आदर्शके अनुसार चलें और काम करें। मनुष्यकी न्यायसंयुक्त विवेचना तभी हो सकती है, जब वह न तो हमारे आदर्शसे और न आपके आदर्शसे किन्तु उसके निजके आदर्शसे तौली जावे। इस प्रकारकी जॉच करना न्याय-नीतिकी जॉच नही किन्तु प्रेमकी जॉच है। जब हम प्रेमके नेत्रोंद्वारा देखने लगते है, तब ही ज्ञानका प्रकाश हो सकता है और तब ही दूसरे मनुष्य वास्तवमें जैसे वे है वैसे दृष्टिगत हो सकते हैं। मनुष्य प्रेमकी ओर तब ही बढ़ता है, जब वह अपने मनमें कहने लगता है कि मैं ऐसा कौन हूॅ जो दूसरेका निर्धार करूॅ? क्या मै स्वयं ऐसा पवित्र और पापशून्य हूॅ कि दूसरोंको बुरा बताऊॅ और उनको दोषी ठहराऊॅ? मुझे स्वयं विनीत बनना चाहिए और दूसरोंके दोष बतलानेके पहले स्वयं अपने दोष दूर करने चाहिए। कबीरजीने सच कहा है—

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो मन खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥"

जब किसी एक कुलटा स्त्रीपर—जो अत्यंत पाप करते हुए पकड़ी गई थी—लोग पत्थर फेंकनेको बाँहें चढ़ाने लगे, तो महात्मा क्राइस्टने कहा—" जिसने कुछ भी पाप न किया हो वही सबसे पहला पत्थर फेंके।" यह सुनकर एक पुरुषने जो यद्यपि पापशून्य और निर्दोष था पत्थर हाथमें नहीं लिया और करुणा तथा नम्रतापूर्वक उस स्त्रीसे कहा कि " तुझे मैं दोषी नहीं ठहराता। जा, अब पाप मत करना।"

पवित्र हृदयमें कोई ऐसा स्थान नही रहता जहाँ द्वेष और स्वार्थ-युक्त निर्णय वास कर सकें, क्योंकि वह कोमलता और प्रेमसे परिपूर्ण हो जाता है। ऐसे हृदयको दूसरोंमें बुराई नहीं दिखती। जैसे जैसे मनुष्य दूसरोंमें बुराई देखना छोड़ता चला आता है, वैसे ही वैसे वह स्वयं पापों, दुःखों और क्लेशोंसे मुक्त होता जाता है।

जब तक मनुष्य ज्ञान प्राप्त न कर ले तब तक वह अपने आपमें या अपने कार्योंमें कुछ भी दोष नहीं देखता। जब उसके ज्ञानका प्रकाश बढ़ने लगता है, तब वह उन कामोंको छोड़ना चला जाता है जिनमें दोष देखता है। प्रत्येक मनुष्य अपने कार्योंको—चाहे दूसरे मनुष्य उनको कितना ही बुरा समझें—उचित प्रमाणित करता है और उनका करना आवश्यक तथा उचित बताता है। यदि वह अच्छा नहीं बतायगा, तो उनको करेगा ही कैसे? क्रोधी पुरुष अपने क्रोधको उचित प्रमाणित करता है। लोभी अपने लालचको और व्यभिचारी अपने दुराचरणको उचित निश्चित करता है। झूठा अपने असत्य भाषणको आवश्यक बताता है। दोषदर्शी उन लोगोंके चरित्रों-

को दूषित बतानेको जिनसे वह घृणा करता है और उनकी बुरी प्रकृतिके लिए उन्हें सचेत करनेको अच्छा मानता है। चोर चोरी करनेको झटपट धनवान् और सुखी बननेका मार्ग समझता है। घातक मनुष्य मारनेके घोर कर्म्मको उचित और दोषरहित समझता है।

प्रत्येक मनुष्यके कार्य जितना उसका ज्ञानका प्रकाश या अज्ञानका अन्धकार होता है उसके हिसाबसे होते है। उसके ज्ञानकी सीमासे बढ़कर न उसका जीवन होता है और न उसके कार्य होते है। परन्तु वह अपने आपको सुधार सकता है और अपने प्रकाश और ज्ञानके विस्तारको बढ़ा सकता है। क्रोधी पुरुष इस कारणसे गाली देता और चिढ़ता है कि उसका ज्ञान क्षमा, सहनशीलता और धैर्य तक नही पहुँचा हुआ है। नम्रता और विनयका अभ्यास न करनेसे इनको वह समझ नही सकता और धारण नही कर सकता। यही दशा असत्यभाषी, दोषदर्शी और चोरकी है। चोरका ज्ञान और अनुभव कच्चा होता है। उसका मन और कार्य अज्ञानताके तिमिरसे आच्छादित है। उसने कभी ऐसा उच्चतर जीवन नही भोगा है कि जिससे वह अपनी पतित स्थितिसे उसकी तुलना कर सके। वह यही समझता है कि मेरे जीवनसे बढ़कर जीवन और कोई नही है। अन्धकारमें प्रकाश चमकता है, परन्तु अन्धकारको उस प्रकाशका क्या अनुभव ? वह अपनी दशाको अच्छी तरह नही समझ सकता, क्यों कि अन्धकारमें रहनेके कारण वह ज्ञानशून्य है।

जब मनुष्य बारंबार दुःख झेलकर अपने आचरणपर दृष्टि डालता है, तब जान जाता है कि मेरे अमुक अज्ञानके—क्रोध, झूठ, इत्यादिके—कारण मुझे इन क्लेशोंको उठाना पड़ा है और फिर उस दोषको छोड़ देता है तथा उससे विपरीत जो उज्ज्वल गुण होता है उसको

ढूँढ़ने और उसका अभ्यास करनेमें लग जाता है। जब वह दृढ़-ताके साथ श्रेष्ठतर मार्गपर चलने लगता है और उसको बुरे और भले दोनों मार्गोंका ज्ञान हो जाता है, तब उसे ज्ञात होता है कि पूर्वमें मै बहुत ही घोर अन्धकारमें फँसा हुआ था। भलाई और बुराईकी अनुभवसे तुलना कर लेना ही ज्ञानका प्रकाश है।

जब मनुष्य दूसरोंके कर्म्मोंको उनहीकी दृष्टिसे देखने लगता है—अपने गजसे न मापकर उन्हींके गजसे मापने लगता है, तब उसको दूसरोंमें बुराई दृष्ट होनेसे रह जाती है। क्योंकि वह जान जाता है कि प्रत्येक मनुष्यके मापके गज और आदर्श पृथक् पृथक् हैं और संसारमें ऐसा हीनसे हीन दोष कोई नहीं है जिसको थोड़े बहुत मनुष्य भी अच्छा न समझें और इसी प्रकार उच्चसे उच्च कोई ऐसा गुण भी नहीं है जिसको थोड़े बहुत मनुष्य बुरा न समझें। जिसको मनुष्य अच्छा समझता है वह उसके लिए अच्छा है और जिसको बुरा सम-झता है वह उसके लिए बुरा है। अन्तर केवल समझका है।

पवित्र मनुष्य जो दूसरोंमें बुराई देखनेसे रह गया है इस बातकी कभी इच्छा नहीं रखता कि दूसरोंको मैं अपने निर्दिष्ट मार्गपर चलाऊँ और अपनी सम्मतिको उनसे ग्रहण कराऊँ। प्रत्युत वह यही प्रयत्न करता है कि वे अपनी अपनी स्वतन्त्र सम्मति रक्खें। क्योंकि वह जानता है कि सम्मतिके बदलनेसे नहीं किन्तु अनुभवके बढ़नसे उच्च ज्ञान और प्रचुर आनन्द प्राप्त होते हैं।

ऐसा देखनेमे आता है कि मनुष्य जिनसे उसका मतभेद होता है उनको बुरा बताता है और जो उससे सहमत होते हैं उनको अच्छा। वह मनुष्य जो अपने आपको अधिक प्यार करता है और

अपने ही मतपर मुग्ध रहता है केवल उन्हीं मनुष्योंसे स्नेह रखता है जो उससे सहमत होते हैं, पर जो सहमत नहीं होते है उनसे घृणा करता है । ईसा मसीहने कहा है कि " जो तुझसे स्नेह करते हैं यदि तू उनसे स्नेह करे, तो तूने क्या किया ? तू अपने शत्रुओंसे स्नेह रख और जो तुझसे घृणा करते हैं उनकी भलाई कर । " अहंकार और अभिमान मनुष्यको अन्धा बनाते है । नाना प्रकारके धर्मसम्प्रदाय आपसमें द्वेष करते और दुःख पहुँचाते हैं । भिन्न भिन्न मतवाले राजनीतिज्ञ आपसमें लड़ते है और एक दूसरेको बुरा बताते है । पक्षपाती सब मनुष्योंको अपने आदर्श और मतसे जाँचता और अपनी सम्मतिको पक्षपातपर स्थापित करता है । वह स्वयं तो इतना दृढ़ है कि खुदको सच्चा और दूसरोंको अपराधी समझता है, परन्तु उनको उनकी इच्छा और बुद्धिके विरुद्ध भी अपने मतके मार्गपर लानेके लिए उनपर अत्याचार करना और उनको दंड देना भला और अनिवार्य समझता है ।

मनुष्य परस्पर द्वेष करते, दोष लगाते, लड़ते और क्लेश पहुँचाते हैं । इसका कारण यह नहीं है कि वे यथार्थमें दुष्ट है या जान बूझकर दुष्टता करते हैं; किन्तु द्वेष और दोषको वे आवश्यक और उचित समझकर करते हैं । सब मनुष्य भीतरसे भले हैं, परन्तु उनमेंसे कोई अधिक बुद्धिमान् है और कोई दूसरोंसे अनुभवमें बढ़े हुए है । कुछ समय पूर्व दो मनुष्योंमें नीचे लिखी हुई बातें हुई थीं जिनका नाम यहाँपर **क** और **ख** रक्खा जाता है । **ग** नामक एक प्रख्यात राजनीतिज्ञ था जिसके विषयमें उनके बीच विवाद हुआ था ।

क—प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों और कर्म्मोंका फल पाता है—अपने पापोंके कारण दुःख पाता है ।

ख—यदि ऐसा है और यदि अपने बुरे कामोंका दंड पाये विना मनुष्य नहीं वच सकता है, तव तो अपने यहाँके कई मनुष्य जो प्रभावशाली राजनीतिज्ञ हैं अपने आपके लिए कितना भयानक नरक तय्यार कर रहे हैं। मनुष्य चाहे अधिकार और शक्तिवाला हो चाहे न हो, जव तक वह अज्ञान और पापमें रहता है तव तक खेद और क्लेश ही प्राप्त करता है।

क—उदाहरणके लिये गकी ओर देखिए, जो सर्व प्रकार दुष्ट है और विल्कुल स्वार्थी तथा लालची है। ऐसे अत्याचारी मनुष्यके लिए वहुत कष्टपूर्ण दंड तय्यार हो रहे होंगे।

ख—परन्तु यह आप क्यों कर जानते हैं कि वह ऐसा दुष्ट है ?

क—उसके कर्मोंसे। जव मैं किसी मनुष्यको वुराई करते देखता हूँ तो जानता हूँ कि वह दुष्ट है। जव मैं गको देखता हूँ तो सच्चे क्रोधसे जलने लगता हूँ। जव मैं किसी मनुष्यको ऐसे पदपर देखता हूँ कि जिसपर रहकर वह दूसरोंको वहुत हानि पहुँचा सकता है, तो मुझे कभी कभी सन्देह होने लगता है कि सत्यमें भलाई करनेकी शक्ति नहीं है।

ख—वह क्या वुराई करता है ?

क—उसकी नीति सर्वथा वुरी है। यदि उसका अधिकार रहा, तो वह समस्त देशको नष्ट कर देगा।

ख—आपकी सम्मतिके अनुसार सहस्रों मनुष्य गको वुरा समझते हैं, परन्तु सहस्रों ही मनुष्य जो आप जैसे ही वुद्धिमान् हैं उसे भला और योग्य समझते हैं, उसकी उत्तम योग्यताकी प्रशंसा करते हैं और उसकी नीतिको भली और देशको उन्नत करनेवाली समझते

है । उसके अधिकारकी स्थिति इन ही लोगोंपर निर्भर है । क्या ये लोग भी जो उसको अच्छा समझते है बुरे है ?

क—उनको भ्रम हो रहा है । और इस बातसे ग की दुष्टताको मैं और भी बढ़ी हुई मानता हूँ कि वह खुद अपना स्वार्थ पूरा करनेके लिए अपनी बुद्धिको दूसरोंको धोखा देनेमें सफलताके साथ काममें ला रहा है । मै उस मनुष्यसे घृणा करता हूँ ।

ख—यह भी सम्भव है कि कदाचित् आप ही धोखा खा रहे हों ।

क—किस प्रकार ?

ख—द्वेष और घृणा करना अपने आपको धोखा देना है । प्रेम आत्मज्ञान है । जब तक मनुष्य द्वेप करना छोड़कर प्रेमभाव रखनेका अभ्यास न करे, तब तक अपने आपको और दूसरोंको दिव्य-दृष्टिसे नही देख सकता ।

क—यह बात तो आपने अच्छी और सुन्दर कही, परन्तु यह असाध्य और असंभव है । जब मै किसी मनुष्यको दूसरोंके साथ बुराई करते, उनको धोखा देते और उनको असत्य मार्गपर लगाते हुए देखूँ, तो मुझे अवश्य उससे घृणा करनी चाहिए । यह उचित है कि मैं ऐसा करूँ । ग के लेशमात्र भी अन्तःकरण नहीं है ।

ख—जैसा आप समझते है वैसा वह है या नहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं । परन्तु यदि मान लिया जाय कि जैसा आप कहते हैं वैसा ही वह है, तो उसपर आपको दया करनी चाहिए न कि घृणा ।

क—यह कैसे ?

ख—आप कहते है कि उसके अन्तःकरण नहीं है ।

क—निस्सन्देह उसके अन्तःकरण नहीं है।

ख—तो वह ज्ञानके हिसाबसे लँगड़ा है। क्या आप अन्धोंसे घृणा करते हैं कि वे देख नहीं सकते? क्या आप गूँगोंसे और बहरोंसे घृणा करते हैं कि वे बोल और सुन नहीं सकते? जब किसी जहाजके कैप्टनका पतवार टूट जाय, या उसका कम्पास खोया जाय और उसका जहाज पहाड़से टकरा जाय, तो क्या आप उसको यह उपालम्भ देंगे कि तुमने अपना जहाज पहाड़से दूर क्यों नहीं रक्खा? जहाजके यात्रियोंकी जो प्राण हानि होगी, क्या उसका उत्तर दाता आप उसहीको समझेंगे? जिस मनुष्यके अन्तःकरण नहीं है, उसके पास सत्य और धर्मके मार्गपर चलानेवाला पथप्रदर्शक यन्त्र नहीं है और इस लिए उसको केवल अपना स्वार्थ भला, सच्चा और उचित ज्ञात होता है। वह आपको बुरा दिखता होगा परन्तु क्या वह स्वयं अपने लिए भी बुरा है? क्या वह स्वयं अपने चरित्रको भी बुरा समझता है?

क—चाहे वह अपने आपको बुरा समझे या नहीं, परन्तु स्वयं तो बुरा है।

ख—यदि मैं आपको इस लिए बुरा समझूँ कि आप उससे घृणा करते हैं, तो क्या मेरा ऐसा समझना ठीक होगा?

क—नहीं।

ख—क्यों?

क—क्योंकि ऐसी दशामें घृणा करना आवश्यक, उचित और सत्य है। सच्चा क्रोध और सच्ची घृणा भी कोई वस्तु है।

ख—क्या सच्चा स्वार्थ, सच्चा लोभ और सच्ची बुराई भी कोई वस्तु है? यदि आप किसी बातको ठीक समझ कर रहे हैं और

गसे घृणा करना मनुष्यत्व और नागरिक कर्तव्य समझकर उचित मानते है और यदि इन बातोंके लिए मै आपको बुरा समझूँ, तो यह मेरी भूल है। परन्तु घृणाकी अपेक्षा एक सुष्ठुतर मार्ग और भी है और इसी सुष्ठुतर मार्गका ज्ञान गके साथ मुझे घृणा करनेसे रोकता है। क्योंकि उसका चरित्र मुझे चाहे जितना बुरा प्रतीत हो, परन्तु स्वयं उसे और उसके सहायकोंको बुरा प्रतीत नहीं होता है।

क—वह सुष्ठुतर मार्ग कौनसा है ?

ख—वह प्रेमका मार्ग है। दूसरोंको बुरा समझनेके स्वभावको त्याग देना ही प्रेम-मार्ग है। यह हृदयकी एक आनन्दयुक्त और शान्तिमय स्थिति है।

क—क्या आपका यह तात्पर्य है कि ऐसी भी दशाको मनुष्य प्राप्त हो सकता है जब कि वह दूसरोंको बुरा करते देखता है, तो भी क्रुद्ध नही होता है।

ख—नहीं, मेरा यह कहना नही है। जब तक मनुष्य दूसरोंको बुरा समझेगा तब तक वह उनपर क्रुद्ध होता ही रहेगा। परन्तु वह शान्त बुद्धि और पवित्र प्रेमकी एक ऐसी दशाको भी प्राप्त हो सकता है जिसको प्राप्त कर चुकनेके पश्चात् ऐसी कोई भी बुराई नही दिखती जिसके हेतु वह क्रुद्ध हो। उसको मनुष्यके कई प्रकारके स्वभाव समझमें आ जाते हैं। वह अच्छी तरह जान जाता है कि किस प्रकार लोग कार्य करनेमें तत्पर होते है और अपने विचार और कर्म्मोंके क्या क्या फल पाते है। इस स्थितिको पहुँचना मानों सब मनुष्योंको अनुकम्पा और प्रेमसे देखना है।

क—आपने जो उपर्युक्त स्थितिका चित्र खीचा है वह निस्सन्देह बहुत ही उच्च, पवित्र और सुन्दर है। परन्तु मैं तो ऐसी

दशाको पहुँचना बहुत दुःखदायक समझता हूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा मन ऐसी दशाको प्राप्त न हो कि जिसमें मैं ग जैसे दुष्ट मनुष्यसे घृणा न करूं।

इस विवादसे स्पष्ट दिखता है कि क घृणा और द्वेषको अच्छा समझता है, इस लिए उनको छोड़ना नहीं चाहता। इसी प्रकार और सब मनुष्य भी जो कुछ वे करते हैं उन कामोंको अच्छा और आवश्यक समझते हैं। जिन बातोंमें मनुष्यका विश्वास होता है, उन्हींको करनेका उसे अभ्यास हो जाता है। जब किसी कार्यमें विश्वास समाप्त हो जाता है, तब उसका किया जाना भी समाप्त हो जाता है। क उतना ही स्वतन्त्र है जितने अन्य मनुष्य, और यदि वह चाहे तो दूसरोंके साथ द्वेष कर सकता है। यह उसका प्राकृतिक स्वत्व है। जब तक उसको उस दुःख और अशान्तिके अनुभवसे—जो उसको द्वेष करनेके उचित फलके रूपमें मिलेगा—यह नहीं ज्ञात हो जायगा कि द्वेष करना बहुत बुरा, मूर्खता और अन्धापन है और इससे मुझे बहुत हानि पहुँच रही है, तब तक वह उसे कभी नहीं त्यागेगा।

एक वार जब किसी प्रतिष्ठित गुरुसे उसके किसी शिष्यने पूछा कि भले और बुरेमें क्या अन्तर है, तो उसने अपने हाथकी अँगुलियाँ नीचेकी ओर करके शिष्यसे पूछा—"मेरा हाथ कौनसी दिशाकी ओर झुका हुआ है?" शिष्यने उत्तर दिया "नीचेकी ओर।" गुरुने फिर हाथकी अँगुलियाँ ऊपरकी ओर करके पूछा कि "अब मेरा हाथ किस दिशाको बताता है?" शिष्यने कहा कि "ऊपरकी दिशाको।" गुरुने कहा कि "बस, यही भले और बुरेमें अन्तर है।" इस सरल उदाहरणसे गुरुने यह बताया कि शक्तिको अशुद्ध और अनुचित दिशामें लगाना ही बुराई है और उसको शुद्ध और उचित दिशामें लगाना

भलाई है। इसी प्रकार जिस मनुष्यको संसार बुरा कहता है यदि वह अपने चरित्रको हाथकी अँगुलियोंकी नाँई उलट दे, तो अच्छा मनुष्य बन जाए। भलाईका अभ्यास करके बुराईका सच्चा अर्थ समझना मानों दूसरे मनुष्योंमें बुराई न देखना है। वह मनुष्य निःसंदेह धन्य है, जो दूसरोंकी बुराई न देखकर अपने हृदयकी पूर्ण पवित्रता प्राप्त करनेके लिए भरसक प्रयत्न करता है। वह एक दिन ऐसे पवित्र नेत्र प्राप्त कर लेगा कि जिनसे थोड़ीसी भी बुराई उसके दृष्टि-पथमें न आएगी।

बुराईका ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको क्या करना चाहिए? उसको चाहिए कि वह केवल भलाईमें रहे। यदि कोई मुझे अपराधी ठहरावे, तो मैं बदलेमें उसको अपराधी नही बताऊँगा। यदि कोई मुझे चिढ़ावे, तो मैं उसपर कृपा करूँगा। यदि वह मेरी बुराई करे, तो मैं उसके गुणोंकी प्रशंसा करूँगा। यदि वह मेरे साथ घृणा करे, तो मैं समझूँगा कि उसको मेरे प्रेमकी आवश्यकता है और इस लिए मैं उससे प्रेम करूँगा। अधीरोंके प्रति मैं धैर्य दिखाऊँगा, लालचियोंके प्रति उदारता रक्खूँगा और लड़ाकों और झगड़ालुओंके साथ नरम और शान्त रहूँगा। मैं जब किसीमें बुराई देखूँगा ही नहीं, तब किसके साथ घृणा करूँगा और किसको अपना शत्रु समझूँगा?

हे मेरे बहिन-भाइयो, यदि संसार तुम्हारी हत्या चाहता है या तुम्हारे साथ द्वेष करता है, तो मुझे बहुत खेद होता है। मेरे साथ तो कोई भी द्वेष या द्रोह नहीं करता। मुझपर सबकी कृपा है। मुझे तो कभी किसीपर रोष नहीं आता।

जो अन्य मनुष्योंको बुरा समझता है, वह विचार करता है कि अपने बुरे विचारों और बुरे कर्म्मोंके पीछे वे उन बुराईयोंकी प्रत्यक्ष और

वास्तविक मूर्त्तियाँ बने बैठे हैं, जो उनको पाप कर्म्मोंसे प्रेरित कर रहे हैं; परन्तु पवित्र हृदयवाला मनुष्य ऐसा नहीं सोचता। वह किसी मनुष्यके कार्योंको बुरा भले ही कहे, परन्तु यह नहीं समझता कि उन कार्योंके पीछे वह मनुष्य स्वयं पापमूर्ति बना बैठा है। संसारका तत्त्व भला है। उस तत्त्वमें बुराई नहीं है, बुद्धिके दोषसे केवल कर्म्म बुरे हैं। भलाई स्थिर है, बुराई स्थिर नहीं है। जैसे एक माँ-बापके जाये और एक ही घरमें रहनेवाले सहृदय बहिन-भाई दुःख सुखमें साथ और पारस्परिक प्रेमसे गठित रहते हैं, आपसकी बुराई नहीं देखते हैं और दोषोंको क्षमा करते हैं, उसी प्रकार भला मनुष्य समस्त मनुष्योंको एक ही घरके बहिन-भाई, एक ही माँ-बापसे जन्मे हुए, एकही तत्त्वके बने हुए, और एक ही आदर्शको माननेवाले समझता है। वह सब पुरुषोंको भाई और सब स्त्रियोंको बहिन समझता है। वह किसीको भिन्न नहीं मानता, किसीको बुरा नहीं समझता और सबके साथ शान्तिसे रहता है। धन्य और सुखी मनुष्य वह है, जो इस आनन्दयुक्त स्थितिको पहुँचता है—जो इस आनन्दकी पगडंडीको ढूँढ़कर इसपर चलता है।

९-स्थायी हर्ष ।

स्थायी हर्ष ? क्या सचमुच कोई ऐसी वस्तु है ? ऐसी वस्तु कहाँ है ? किसके पास है ? हाँ, सचमुच एक ऐसी वस्तु है । यह वहाँ है जहाँ पाप नही है । यह पवित्र हृदयमें रहती है ।

जैसे अन्धेरा एक चली जानेवाली छाया है और उजाला एक ठहरनेवाला पदार्थ है, उसी प्रकार दुःख एक अस्थिर अर्थात् व्यतीत हो जानेवाली दशा है और हर्ष सदैव ठहरनेवाली वस्तु है । कोई भी वास्तविक पदार्थ व्यतीत और लुप्त नहीं हो सकता, परन्तु झूठी वस्तु नहीं ठहर सकती । दुःख असत्य अर्थात् झूठ है और अस्थिर है । हर्ष सत्य है और स्थिर है । कुछ कालपर्यन्त हर्ष छिपा हुआ रह सकता है, परन्तु वह फिर प्राप्त हो सकता है । दुःख कुछ काल भले ही रह जाय, परन्तु वह दबा दिया और हटा दिया जा सकता है ।

कभी मत विचारो कि तुम्हारा दुःख स्थिर रहेगा । यह बादलकी तरह दूर चला जायगा । यह कभी विचार न करो कि पापके क्लेश सदैव तुम्हारे ही भागमें बँटे हैं । वे एक भयानक स्वप्नकी नाईं झटपट दूर हो जावेंगे । उठो, जागो, पवित्र और हर्षित बनो ।

तुम अपने स्वप्न आप ही रचते हो। जितना लोभ करोगे, उतना ही तुम्हें रोना पड़ेगा। जितना लोभ तजोगे, उतने ही प्रसन्न रहोगे।

तुम दुःखके अशक्त दास नहीं हो। कभी समाप्त न होनेवाला हर्ष गृहद्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। पापके स्वप्न और अन्धकारके तुम असहाय बन्दी नहीं हो। तुम्हारी मुँदी हुई पलकों-पर अब भी पवित्रताका सुन्दर प्रकाश चमक रहा है और तुम्हारे जागनेकी प्रतीक्षा कर रहा है।

स्वार्थ और पापकी दुःखमयी भारी निद्रामें स्थिर हर्ष खोया और भूला जाता है। उस हर्षका अनन्त गीत सुनाई नहीं देता और उसके पुष्पोंकी सुगन्धि पथिकके हृदयको आनन्दित करनेसे रुक जाती है।

परन्तु जब पाप और स्वार्थ त्याग दिये जाते हैं, जब इन्द्रियसुखके लिए विषयोंमें आसक्त होना छोड़ दिया जाता है, तब शोककी धुँधली छाया परे हट जाती है और हृदय अजर हर्षको प्राप्त होता है।

हर्ष पापसे खाली किये हुए हृदयमें भरता है। हर्ष शान्त स्वभा-वमें स्थिर रहता है। हर्षका राज्य पुण्यात्माओंपर है। स्वार्थियोंसे हर्ष दूर भागता है। लड़ाकोंको यह छोड़ देता है और पापियोंकी दृष्टिसे ओझल रहता है।

हर्ष एक ऐसा सुन्दर, कोमल और पवित्र स्वर्गदूत है कि यह पुण्यहीके साथ वास कर सकता है। यह स्वार्थके साथ नहीं रह सकता। यह केवल प्रेमका सम्बन्धी है।

स्वार्थकी इच्छा जितनी न्यून होती है हर्ष उतना ही अधिक प्राप्त होता है। यद्यपि हर्षकी पूर्ण प्राप्ति और लगातार स्थिरता तो पुण्यात्माओंको ही होती है; परन्तु सर्व साधारणको भी जिस जिस

क्षण और जिस जिस घड़ी वे स्वार्थको छोड़ देते हैं हर्षका मधुर आस्वाद चखनेको मिल जाता है। प्रत्येक सच्चे और स्वार्थशून्य विचार और कर्म्ममें वह हर्ष प्राप्त होता है, जो क्षणिक आह्लाद नहीं है, जो विलास नही है और जिसके पश्चात् शोक नहीं होता।

प्रत्येक मनुष्यको सच्चा आनन्द उतना ही मिलता है जितना वह स्वार्थत्यागी है। जितना वह स्वार्थी है, उतना ही वह दुखी है। वे सब वास्तविक भले मनुष्य—जिन्होंने अहंकार और स्वार्थपर विजय प्राप्त की है—आनन्दमें रहते हैं। कोई भी सच्चा गुरु यह नहीं कहता कि जीवनके अन्तमें दुःख मिलेगा। वह यही बताता है कि अन्तमें आनन्द मिलेगा। वह दुःखको केवल एक द्वार बताता है, जो पापके कारण अनिवार्य हो जाता है। जहाँ अहंकार और स्वार्थ समाप्त होते हैं, वहीं शोक दूर हट जाता है। हर्ष सत्यका साथी है। पवित्र जीव-नमें उस स्थानपर जहाँ पहले रोता हुआ दुःख बैठा करता था कोमल दया बैठ जाती है। स्वार्थ त्यागनेके कार्यमें मनुष्यको दुःख कई बार आ घेरते है। पवित्र बनते समय क्लेश अवश्य होता है; परन्तु बननेहीमें दुःख होता है, बने पश्चात् तो आनन्द ही आनन्द है।

विचार करो कि पुष्प कैसे बनता है। पहले एक छोटासा अंकुर अन्धेरी मिट्टीमेंसे अपना मार्ग ढूँढ़ता हुआ ऊपरके प्रकाशकी ओर निक-लता है। फिर पौधा दिखलाई देता है। पत्तेपर पत्ता जुड़ता जाता है। अन्तमें पूर्ण पुष्प निकलता है जिसकी मधुर सुगन्धि और पवित्र सौन्दर्यमें प्रकृतिका प्रयत्न समाप्त होता है।

इसी प्रकार मानव-जीवन है। मनुष्य पहले स्वार्थ और अज्ञान-ताकी अन्धेरी मिट्टीमें अन्धेकी तरह प्रकाशको टटोलता है। फिर प्रकाशमें आता है और धीरे धीरे पीड़ा और दुःख पाता हुआ स्वार्थ-

को हटाता हुआ ऊपर उठता आता है। अन्तमें पूर्ण पुष्पकी नाईं स्वार्थशून्य और पवित्र जीवनको प्राप्त करता है और सबको बिना श्रमके पवित्रताकी सुगन्धि और आनन्दका सौन्दर्य देता है।

भले और पवित्र मनुष्य पूर्ण हर्षित होते हैं। चाहे लोग इस बातको न्यायकी दृष्टिसे न्यूनाधिक मानें, परन्तु मानव-हृदय इसके सब. ही सच्चा जानता है। क्या लोग फरिश्तों या स्वर्गदूतोंको बहुत ही प्रसन्नकाय नहीं मानते हैं? मांस और हड्डीके बने हुए कई मनुष्य-शरीर भी उन फरिश्तोंके तुल्य प्रसन्नकाय हैं। हमारी उनसे कभी कभी भेंट तो हो जाती है; परन्तु हम उनको छोड़कर आगे चले जाते हैं; क्योंकि उनसे भेंट करनेवाले हम स्वयं इतने पवित्र नहीं हैं कि उन देहधारी फरिश्तोंको अन्दरसे पहिचान सकें।

जो पवित्र हैं वे ही हर्षपूर्ण हैं। पापमें और पापसे लड़नेमें अशान्ति और दुःख है, परन्तु सत्यकी परिपूर्णता और सत्यके मार्गमें स्थायी हर्ष और आनन्द है।

दुःख उसी समय तक रहता है, जब तक स्वार्थका भूसा दूर नहीं होता। जब भूसेमेंसे अनाजके दाने पृथक् कर लिये जाते हैं, तो भूसा कूटनेकी मशीनका कार्य समाप्त हो जाता है। इसी तरह जब आत्मासे रही सही अशुद्धियाँ भी उड़ा दी जाती हैं, तो दुःखकी कार्य-प्रणाली समाप्त हो जाती है, फिर उसकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर तो स्थायी आनन्द ही प्राप्त होता है।

संसारके समस्त महात्मा, साधु और सुधारकोंने हर्षके साथ एक सुसंवाद सुनाया है। सुसंवादोंको सभी जानते हैं। किसी भविष्यत् आपत्तिका आनेसे पूर्व रोका जाना, रोगका दूर हो जाना.

मित्रों और दयित जनोंका सकुशल आ पहुँचना, कठिनाइयोंका दमन कर लेना, किसी कार्यमें सफलता लाभ कर लेना—ये ही सब सुसंवाद हैं। परन्तु महात्माओंका सुसंवाद क्या है? वह यह है कि दुःखितके लिए शान्ति, जखमीके लिए मरहम, शोकपीड़ितके लिए हर्ष, पापीके लिए विजय, भटकते हुएके लिए घरका निवास, दुःखित और विदीर्णहृदयके लिए आनन्द मिलेगा। यह नहीं कि ये सुन्दर पदार्थ किसी आनेवाले जन्ममें मिलेंगे। नहीं, ये यहीं हैं और अभी उपस्थित हैं। ये ज्ञात, प्राप्त और भुक्त हैं और इसी हेतु महात्मा पुकार पुकारकर कहते हैं कि जो स्वार्थके कटु बन्धनको तोड़ डालता है, वही इन पदार्थोंको प्राप्त कर लेता है और स्वार्थशून्य प्रेमकी देदीप्यमती स्वतन्त्रताके राज्यमें पहुँच जाता है।

उत्तमोत्तम भलाईको खोजो और उसे प्राप्त करनेके पश्चात् उसका अभ्यास और अनुभव करो। इसमें बहुत गहरे और मीठे आनन्दका स्वाद मिलेगा। दूसरोंके लिए विचार करने, उनके लिए चिन्ता तथा प्रेम करने और उनकी सेवा करनेमें जितने अधिक परिमाणमें तुम अपने स्वार्थकी वासनाओंको भूलोगे, जीवनमें तुम्हें उतना ही आनन्द मिलेगा। उससे अधिक नहीं मिल सकता।

निःस्वार्थताके द्वारके अन्दर स्थायी हर्षका मन्दिर है। जो चाहे वही उसके अन्दर प्रवेश कर सकता है। जिस किसीको सन्देह हो, वह अन्दर जाकर देख ले कि बात सच्ची है या झूठी। यह जानकरके कि स्वार्थ दुःखको पहुँचाता है और निस्स्वार्थ आनन्दको, और वह केवल हमें ही नहीं बल्कि समस्त संसारको, और यह जान करके कि हम जिनके साथ रहते हैं और जिनसे मिलते जुलते हैं, वे भी हमारी स्वार्थशून्यतासे अधिकाधिक सुखी और सच्चे बनेंगे और यह

जान करके कि मनुष्यसृष्टि एक ही है, जो एकका सुख है वह सबका है—हमें साधारण मार्ग और पगडंडियोंमें भी फूल बिछाने चाहिए न कि काँटे—इतना ही नहीं बल्कि जिनको हम अपना शत्रु समझते हैं उनके मार्गमें भी हमें स्वार्थशून्य प्रेमकी कलियाँ बिछानी चाहिए। उनके चलनेसे कलियाँ और फूल दबेंगे और पवित्रताकी सुरभिसे वायुको भर देंगे तथा आनन्दकी सुगन्धिसे संसारको हर्षित करेंगे।

१०–मौन ।
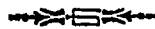
हे मनुष्य, तू मौन धारण कर । मौन जीवनका मुकुट है । प्रत्येक दिन बहुत लम्बा होता है और उसका अधिकाश हम व्यर्थ और थोथी बाते करनेमे व्यतीत कर दिया करते है । एक–आध घटा तो हमें मौन रहना चाहिए ।

यदि तुम अपने भाषणको शक्तिमान् और प्रभावशाली बनाना चाहते हो, तो थोडी देरके लिए चुप रहकर, गप्प हॉकना थामकर, ज्ञान सीखो तथा मौनकी सुनहरी वक्तृताका अभ्यास करो । —ए. एल. सामन ।

हे आत्मन् , तू चुप रह । प्रज्ज्वलित उद्वेग और कार्य-व्यग्रतासे अल्पकालके लिए हटकर विश्राम ले । उसमें नितान्त लवलीन न हो । घडी भरके लिए एकान्तमें रहनेसे भयभीत मत हो । —अरनैस्ट क्रासबी ।

बुद्धिमान् मनुष्यके भाषणमें तो शक्ति होती ही है, परन्तु उसके मौनमें और भी अधिक शक्ति होती है । उत्तमोत्तम पुरुष जब जानकर चुप होते है, तब हमें और भी अधिक प्रभावपूर्ण शिक्षा देते हैं । महापुरुषोंका मौनभाव हजारों बरस तक स्थिर और शिक्षाप्रद रहता है । एक वाक्पटु और विवादी वक्ताके वचन सहस्रों मनुष्य सुनते हैं और यद्यपि उस समय वे श्रोताओंको बहुत रोचक प्रतीत होते हैं, परन्तु कालान्तरमें बिलकुल विस्मृत हो जाते हैं । जब पाईलेटने ईसा मसीहसे पूछा कि “ सत्य किसे कहते हैं ? ” तो ईसा चुप हो रहे । उस समयका मौन उनकी गम्भीर बुद्धिमत्ताके प्रभाव-

को स्पष्ट करता है। वह मौन नम्रता और उपालम्भसे परिपूर्ण होता है और सदैव इस कहावतको सिद्ध करता है कि "जहाँ स्वर्गदूत पैर रखते डरते हैं, वहाँ मूर्ख जन घुस पड़ते हैं।"

जब तार्किक ब्राह्मणोंने ब्रह्मके विषयमें प्रश्न करके बुद्ध महाराजको तंग करना शुरू किया, तो वे चुप हो रहे। उनके मौनने उनके ज्ञानसे भी गुरुतरा शिक्षा दी और यद्यपि वे अपने मौनसे मूर्खोंका समाधान न कर सके; परन्तु विद्वानोंको उन्होंने खूब शिक्षा दी। असहनशीलतासे भरा हुआ यह ईश्वरविषयक नास्तिक-आस्तिकत्वका वाद-विवाद क्यों फैला हुआ है? लोगोंको चाहिए कि वे इस विषयमें थोड़ीसी दयालुता और श्रद्धाका अभ्यास करें और बुद्धिमत्ताके साधारण नियमोंको जान लेवें। ईश्वर क्या है, इस विषयमें इतनी कल्पित दलीलें क्यों खड़ी की जाती है? पहले हमें कुछ अपने विषयमें भी तो समझ लेना चाहिए। नास्तिकता और मनमानी सम्भावनासे बढकर मूर्खता और बुद्धिके कच्चेपनका और कोई प्रमाणसूचक चिह्न नहीं है। इसी प्रकार आस्तिकता और नम्रताके बराबर बौद्धिक और आध्यात्मिक परिपक्वताका और कोई लक्षण नहीं है। लाऊजीने अपने जीवनसे ही अपनी इस शिक्षाको सिद्ध किया था कि "बुद्धिमान् शब्दोंका उच्चारण किये बिना ही, अर्थात् मौनसे ही शिक्षा देता है।" इस मौनकी शक्तिसे उनके बहुतसे शिष्य हो गये थे। वे अधिकतर एकान्तमें और मौन रहते थे। वे न मनुष्य-वाणी सुननेके लालसी थे और न उपदेश देनेको बाहर जाते थे। लोग स्वयं ही उनके पास जा पहुँचते और उनसे ज्ञान सीखते थे। पूर्वकालीन महत्पुरुषोंके मौन-कार्य धीमानोंके लिए दूरसे चमकनेवाले दीपक हैं, जिनका प्रकाश उनको मार्ग दिखाता है। क्यों कि जो मनुष्य नेकी और ज्ञानको प्राप्त करना चाहता है,

उसको केवल यही नही सीखना चाहिए कि वह कब बोले और कहाँ बोले, प्रत्युत यह भी सीखना चाहिए कि वह कब कब मौनको धारण करे और किस किस बातको न कर। जिह्वापर उचित अधिकार जमा लेना बुद्धिमत्ताका आरम्भ और मस्तिष्कपर उचित अधिकार जमा लेना बुद्धिमत्ताकी पराकाष्ठा है। जबानको रोकनेसे मनुष्यको मस्तिष्कपर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है। मूर्ख बड़बड़ाता, गप हॉकता, विवाद करता और शब्द-संग्राम करता है। वह इस बातपर इतराता है कि मुझे जो कुछ कहना था सब कह दिया और मैंने अपने प्रतिवादीकी जबान बन्द कर दी। वह अपनी मूर्खतापर अभिमान करता है, अपना ही बचाव करता है और अपनी शक्ति निरर्थक प्रयोगमें बिताता है। वह उस बागवानकी तरह है, जो बंजर भूमिको खोदता और उसपर पेड़ लगाता है।

धीमान् बकवाद, गप और असत्य विवादसे बचता है। वह परास्त होनेमें संतुष्ट और प्रसन्न होता है। जब वह हारता है, तो हर्षित होता है कि मेरा एक दोष मेरी समझमें और आ गया, जिससे मेरी बुद्धि और भी उन्नत हुई। वह मनुष्य धन्य है जो 'इति श्री' कहनेके लिए उत्सुक नहीं होता। किसी महत्पुरुषका वचन है कि "मैं पहले शाब्दिकों और तार्किकोंसे शास्त्रार्थ और वाद-विवाद किया करता था, परन्तु अब मै अपनी उस मूर्खताको बहुत निंद्य समझता हूँ। अब मैं न विवाद करता हूँ और न दोष लगाता हूँ। मै केवल चुपचाप सुना करता हूँ।"

छेड़े जाने पर भी चुपचाप रहना आत्माके परिपक्क और सहानुभूतिपूर्ण होनेका चिह्न है। विचारशून्य और दयाहीन मनुष्य जरासे छेड़ जानेपर उत्तेजित हो जाते हैं। थोड़ासा आक्षेप किये

जानेहीसे उनकी बुद्धिका तराजू बिगड़ जाता है। ईसा मसीह और बुद्ध महाराजका आत्मदमन कौतुक या करामात नहीं किन्तु उनकी परिपक्वताका पुष्प और उनकी बुद्धिमत्ताका केन्द्र था। जब हम पुस्तकोंमें पढ़ते हैं कि ईसा मसीहने विवादके एक शब्दका भी उत्तर नहीं दिया था और बुद्ध महाराज शास्त्रार्थ करनेपर चुप हो रहते थे, तो हमें उनके मौनकी असीम शक्तिकी और उनके यथार्थ महत्त्वकी शान्त प्रतिभाकी झलक दिखाई दे जाती है।

मौनी मनुष्य ही शक्तिमान् मनुष्य है। बकबक करनेवालेके शब्दोंमें प्रभाव नहीं होता। उसकी आध्यात्मिक शक्तियाँ बड़बड़ानेमें व्यय हो जाती हैं। जब किसी एंजिनकी शक्तिको काममें लानी होती है, तब उसे चलानेवाला कारीगर मशीनकी शक्तिको संचित कर लेता है। बुद्धिमान जन भी उस एंजिन चलानेवाले कारीगरकी नाईं अपने मस्तिष्ककी शक्तियाँ एकत्रित करके उन्हें रोक रखता है, ताकि जब और जहाँ चाहिए वहीं उनका उचित और सशक्त प्रयोग करके वह अपने आवश्यक कार्यको सफलताके साथ सम्पादन कर ले।

वास्तविक शक्ति मौनमें है। यह कहावत प्रख्यात है कि जो कुत्ता भौंकता है वह काटता नहीं; जो भौंकता नहीं है वही काटता है। 'बुल-डॉग' जातिके कुत्तेका भयानक मौन प्रख्यात है। वह चुपचाप रहता है, परन्तु जब काम पड़ता है तब अपनी चुप्पीमें संचित की हुई शक्तिको बड़ी ही प्रबलतासे काममें लाता है। यद्यपि यह कुत्तेका मौन नीच श्रेणीका है, परन्तु इससे नियम वही सिद्ध होता है। डींग हाँकनेवाला बहुधा असफल होता है, अपने मुख्य उद्देश्यसे उसका ध्यान विभक्त हो जाता है और उसकी आन्तरिक शक्तियाँ आत्मश्लाघाहीमें व्यय हो जाती हैं। उसका मनोबल उसके कार्य और उस कार्यके आगामी उपहा-

रके लालचमें बँट जाता है। वह उस सेनापतिकी नाईं कार्य करता है, जो अपनी सेनाको एक ही स्थानपर इकट्ठी न करके स्थान स्थानपर बाँट देता है। वह उस इंजीनियरकी नाईं है, जो व्यर्थ शक्तिके (Waste-Valve) निकालनेके पेंचको खुला रखकर काममें आनेवाली भापको यों ही निरर्थक जाने देता है। विनीत मौनी और उद्योगी पुरुष ही कार्यकुशल होता है। वह आत्माभिमान और स्वयंश्लाघासे बच-कर अपनी समस्त शक्तियाँ कार्यको सफलतासे सिद्ध करनेमें झोंक देता है। बातूनी मनुष्य अपनी शक्तिकी प्रशंसामें जितना समय लगाता है, उतना कार्यार्थी अपने कार्यके सम्पादनमें लगाता है और बातूनीकी अपेक्षा कार्यको शीघ्र सम्पूर्ण कर लेता है। यह एक सर्वव्यापक और सर्वकालीन नियम है कि विभक्त शक्ति संचित और सुरक्षित शक्तिके अधीन रहती है। बातूनी और आत्मश्लाघा कर-नेवाले चार्ल्सको चुपचाप और नम्र आरलेंडो सदैव नीचे गिरा देता है।

यह सर्वव्यापक नियम है कि मौनमें बहुत शक्ति है। एक कार्यकुशल व्यापार करनेवाला मनुष्य अपने हथकंडों, चालों और विचारोंको जगह जगह नहीं कहता फिरता। यदि अपनी सफलतासे मुग्ध और अल्हड़ होकर वह इधर उधर बकने लगेगा, तो सफलतासे अवश्य गिर जायगा। आध्यात्मिक प्रभाववाला मनुष्य अपने और अपनी आन्तरिक सफल-ताके विषयमें बातें नहीं बनाता। यदि वह ऐसा करे, तो उसकी आध्यात्मिक शक्ति और प्रभाव घट जायँ और वह शक्तिहीन हो जाय। सफलता चाहे व्यावहारिक हो, चाहे धर्मसम्बन्धी और चाहे मानसिक, यह सुशक्त और धैर्यपूर्ण मौन, दृढ विचार और मनोबलकी सेविका है। बहुत बलवाली शक्तियाँ कोलाहल नहीं मचातीं। महत्प्रभाव-शाली मनुष्य मौनसे कार्य करता है।

यदि तुम बलवान्, उपयोगी और स्वावलम्बी बनना चाहते हो, तो मौनकी उपयोगिता और शक्तिको सीखो। अपने विषयमें बातें मत बनाओ। संसार स्वतः ही जान जाता है कि मिथ्याभाषी बलहीन और शून्य होता है और इस लिए वह उसे अपनी डींग हाँकनेके लिए छोड़ देता है। जो कुछ तुम्हें करना है, उसके विषयमें पहलेहीसे अधिक बातें मत करो, किन्तु उस कामको करो। अपनी शक्तिको दूसरोंकी कार्यप्रणालियोंकी टीका-टिप्पणी करने और उनकी निन्दा करनेमें व्यय मत करो, बल्कि अपने कामको भले प्रकार करनेमें लगाओ। कुत्सित प्रकारसे किया हुआ काम भी यदि उत्साह और माधुर्यकी सहायतासे किया जाय, तो दूसरोंके कामोंपर बकने झकनेकी अपेक्षा अच्छा है। तुम दूसरोंके कार्योंकी तो निन्दा करते हो, परन्तु अपने कार्यकी खबर ही नहीं लेते। यदि दूसरे अपने कामोंको भली भाँति नहीं करते हैं, तो उनकी सहायता करो और अपने कार्यको अच्छी तरह करके उनके लिए उदाहरण बनो। न तुम दूसरोंकी निन्दा करो और न दूसरे तुम्हारी। यदि वे तुम्हारे ऊपर आक्रमण करें, तो तुम चुप्पी साध जाओ। इस प्रकार तुम अपने आपपर विजयी हो जाओगे और बिना भाषण किये ही दूसरोंको शिक्षा दे सकोगे।

परन्तु यथार्थ मौन जिह्वाका बन्द रखना नहीं, मनका शान्त रखना है। यदि तुमने जबानको तो बन्द रक्खा और मनको अस्थिर तथा भड़कता हुआ रक्खा, तो ऐसा मौन निर्बलताकी औषध और शक्तिका उपाय नहीं हो सकता। मौन शक्तिशाली तभी हो सकता है, जब वह मस्तिष्क और हृदयमें पूर्ण व्याप्त रहता है। मौन शान्त होना चाहिए। मनुष्य अपने आपपर जितना विजयी होता है, उतना ही वह विस्तृत, गम्भीर और स्थिर मौनको प्राप्त कर लेता है। जबतक

क्रोध, लालसा, दुःख आदि मनमें उपद्रव उत्पन्न करते रहते हैं, तब तक मौनकी पवित्र और गम्भीर गहराईमें पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती। दूसरोंके वचनों और कार्योंसे जब तक तुम्हारी प्रकृति दुःख पाती है, तब तक यही समझो कि अभी तक तुम निर्बल, अपवित्र और आत्म-दमनरहित हो। इस लिए अभिमान, अहंकार और स्वार्थ इत्यादि अशान्तिका संचार करनेवाले प्रभावोंको अपने हृदयसे निकालो, ताकि क्रोधका लेश मात्र भी तुम्हारे अन्दर न रहे और कोई भी बुराई या निन्दा तुम्हारी स्वच्छ शान्तिको न हिला सके। दृढ बने हुए मकानपर वायुका प्रचण्ड वेग चला करता है, परन्तु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं होता और उसके अन्दर रहनेवाला मनुष्य शान्ति और सुखके साथ अँगीठीके पास बैठा तापता रहता है। इसी प्रकार जो बुद्धिके दृढ़ मकानमें बैठा हुआ है, उसको कोई भी आपत्ति हानि नहीं पहुँचा सकती। आत्मदमन और शान्तिके साथ वह विश्रामसे बैठा रहता है। केवल जितेन्द्रिय मनुष्य ही इस महत् मौनको प्राप्त होता है।

लोगोंका यह समझना बड़ा भारी भ्रम है कि जब तक किसी विषयपर धूम धामके साथ बात न की जावे और उसके लिए आन्दोलन या कोलाहल नहीं मचाया जावे, तब तक वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। व्यर्थभाषी शान्त विचार करनेवाले और चुपचाप कार्य करनेवालेको निकम्मा समझता है। वह विचार करता है कि चुप्पीका अर्थ कुछ नहीं करना है और शीघ्रता करना, चंचलता दिखाना, और लगातार बोलना खूब काम करना है। वह केवल सर्वप्रियताको शक्ति और प्रभाव समझता है। परन्तु विचारशील और कार्यकुशल मनुष्य वास्तविक और सफल कार्यसम्पादक होता है। उसका कार्य विषयकी जड, उसके मर्म और तात्पर्यको समझ कर करना है। जैसे प्रकृति मौनवृत्ति

और अद्भुत रसायनके द्वारा पृथ्वी और वायुके अवघड़ तत्त्वोंसे वृक्षके कोमल पत्ते, सुन्दर पुष्प, स्वादिष्ट फल और दूसरे सहस्रों सुन्दर आकार रच देती है, उसी प्रकार मौनी और अर्थसाधक कार्यकर्त्ता मनुष्योंकी प्रणालियोंको और पृथ्वीके स्वरूपको अपनी शान्त शक्तिके बल और चमत्कारसे बदल देता है। वह वस्तुओंकी परिवर्त्तनशील और अप्राकृतिक स्थितिसे नहीं खेलता, किन्तु उनके आन्तरिक मर्म तक पहुँचता है, वहाँ पहुँचकर कार्य करता है और अन्त समय आनेपर जब मृत्यु उसके स्थूल शरीरको संसारसे हटा देती है, तब भी उसके गुप्त और अमर परिश्रमोंके फल संसारको सुखी और हर्षित बनाते रहते हैं। परन्तु व्यर्थभाषी मनुष्यके वचन बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं। शब्दोंकी खेतीमें फल नहीं लगते।

जो अपनी मानसिक शक्तियोंको इकट्ठा और संचित करता है, वह अपनी शारीरिक शक्तियोंको भी एकत्रित रखता है। बलिष्ट, शान्त और मौनी मनुष्य शीघ्रगामी चंचल और कोलाहल मचानेवाले मनुष्यकी अपेक्षा अधिक जीता है और श्रेष्ठतर स्वास्थ्यका सेवन करता है। शान्त और विनीत मानसिक सुरीलापन (सुसंगति) शारीरिक सुरीलेपनको बढ़ाता है। मौन इस लिए शक्तिशाली है कि वह आत्मदमनका फल है। जितनी अधिक सफलतासे मनुष्य अपने आपको जानता है, उतनी ही शान्ति और मौन उसको प्राप्त होता है। क्योंकि वह किसी निमित्त और उद्देश्यको स्थापित करके रहता है न कि स्वार्थपूर्ण विलासोंको भोगनेके लिए। अत. वह संसारके बाहरी झगड़ोंसे परे सरक जाता है और शान्तिके आन्तरिक सुरीलेपनको पहुँच जाता है। जब वह बोलता है, तो किसी अर्थ और उद्देश्यसे बोलता

है और जब मौन रहता है, तब भी उसका कुछ उद्देश्य और अर्थ होता है। वह ऐसे वचन मुखसे नहीं निकालता कि जिनसे दुःख पहुँचे या अश्रु बरसें। वह ऐसा कार्य नहीं करता जिससे क्लेश और पश्चात्ताप उत्पन्न हों। अच्छी बातोंके कहते हुए और अच्छे कार्योंके करते हुए उसका अन्तःकरण शान्त रहता है और उनके सब दिन आनन्द-मंगलमें व्यतीत होते हैं।

११-एकान्तवास ।
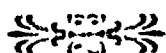
उस उत्तरके लिए जो तुम्हारी आध्यात्मिक एकान्तता दे सकती है बाह्य वस्तुओंको क्यों खोजते हो ? जब स्वर्गकी झाँकी तुम्हारे निकट ही है, तब पर्वतोंपर चढ़नेका परिश्रम क्यों उठाते हो ? महात्मा एकान्तवासमें विचार किया करता है और अपनी जाली लगी हुई दृष्टिमें आकाशके उन सितारोंको जो रात्रिको सुशोभित करते हैं दो-पहरमें ही देख लेता है । —व्हीटीयर ।

मौनके समयमें जब इन्द्रियाँ शान्त रहती हैं तुम अपने हृदयमें बुद्धिका भाण्डार भर लो । —वर्ड्‌सवर्थ ।

मनुष्यका प्रधान अस्तित्व आन्तरिक, अदृष्ट और आध्यात्मिक है और इस कारण वह अपना जीवन और बल अन्दरसे प्राप्त करता है न कि बाहरसे । बाहरी वस्तुएँ तो एक प्रकारकी नहरें हैं जिनके द्वारा इस अस्तित्वकी शक्तियाँ व्यय होती हैं । उन व्यतीत शक्तियोंके नूतन-करणके लिए अन्दरके मौनका आश्रय लेना पड़ता है ।

मनुष्य जितना इस आभ्यन्तरिक मौनको इन्द्रियोंके कोलाहलयुक्त विलासमें डुबोता है और बाहरके पदार्थोंके संघर्षमें लिप्त रहनेकी चेष्टा करता है, उतना ही वह क्लेश और दुःखका अनुभव करता है, यहाँ तक कि अन्तमें उनसे परिश्रान्त होकर अभ्यन्तरमें विश्राम देनेवाले शान्त एकान्तके चरणोंमें गिरता है ।

जैसे शरीर निरे तुस खाकर जीवित नही रह सकता, उसी प्रकार आत्मा भी केवल असार विलासोंपर निर्भर नही रह सकता। यदि शरीरको भले प्रकार भोजन न मिले, तो वह दुर्बल हो जाता है और भूख-प्याससे व्याकुल होकर भोजन और पानीके लिए पुकारने लगता है। यही स्थिति आत्माकी है। इसको भी एकान्तमें स्वच्छ और पवित्र विचारोंका भोजन कराना आवश्यक है, नहीं तो इसकी नवीनता और शक्ति नष्ट हो जाती है और अन्तमें यह भूखसे दुःखित होकर पुकारने लगती है। प्रकाश और आश्वासनके लिए जो दुःखित आत्माकी उत्कट वासना होती है, वह उस आत्माकी मानों भूख और प्यासके लिए आर्त्त पुकार है। समस्त दुःख और क्लेश आत्माका भूखे मरना है और ज्ञान और प्रकाशकी इच्छा करना उसका भोजनके लिए पुकारना है। कपूत बेटा जब बाहर जाकर और अपने धनको नष्ट करके भूखों मरने लगता है, तब अपना मुख अपने पिताके घरकी ओर करता है। यही दशा आत्माकी है।

इन्द्रियलोलुपतामें आत्माको पवित्र जीवन नहीं मिलता, बल्कि वह उल्टा खोया जाता है। इन्द्रियोंकी यही इच्छा रहती है कि हमें और भोग मिलें, वे शान्त नही रहती। बाहरी आनन्द, कोलाहल और चंचलता, थकान और निर्बलता उत्पन्न करते हैं। मानसिक शक्तियोंको जो हानि होती है, वह फिर आभ्यन्तरिक एकान्तमें पूरी की जाती है। जैसे शरीरको श्रम किये पश्चात् पुनः शक्ति प्राप्त करनेके लिए विश्रामकी आवश्यकता है, उसी प्रकार आत्माको भी अपनी शक्तियोंको पुनः यथोचित करनेके लिए एकान्तमें विश्राम लेनेकी आवश्यकता है। मनुष्यके सूक्ष्म शरीरके स्वास्थ्यके वास्ते एकान्तता इतनी आवश्यक है जितनी उसके स्थूल शरीरकी

आरोग्यताके लिए निद्रा । पवित्र विचार या ध्यान जो एकान्तमें उत्पन्न होता है वह आत्माके लिए उतना ही उपयोगी है जितना शरीरके लिए व्यायाम । जैसे शरीर आवश्यक विश्राम और निद्राके बिना टूट जाता है वैसे ही आत्मा भी आवश्यक शान्ति और एकान्तके बिना मुरझा जाता है । मनुष्य आध्यात्मिक अस्तित्वकी गणनासे जब तक समय समयपर नाशमान् पदार्थोंके बाहरी संसारसे पृथक् होकर आन्तरिक एकान्तकी स्थिर और अमर वास्तविकताओंका सेवन नहीं करता, तब तक अपनी शक्ति और धार्मिकताको स्थिर नहीं रख सकता है । धर्म्मसे चित्तको जो शान्त्वना मिलती है, वह एकान्तहीमें मिलती है । धर्म्मविधियोंके अनुसार एकाग्रतापूर्वक और सांसारिक उलझनोंसे बचकर ध्यान उपासना आदि करना मनुष्यको स्वतः ही समय समय-पर आध्यात्मिक शान्तिमें मन लगाना और उन्नत और पवित्र वासना-ओंमें ध्यान लगाना सिखाता है । जिसकी अन्दरकी जगानेवाली काम-नाएं तो उसके पास जो कुछ है उससे भी उन्नत और योग्य वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए खोज कर रही हैं परन्तु जिसने अपने मनको कभी एकान्तमें स्वच्छ और अधीन बनाना नहीं सीखा है, ऐसे मनुष्यको लौकिक विधियोंकी सहायताकी बड़ी भारी आवश्यकता है; परन्तु जिसने आत्मदमनके लिए अपने आपको हाथमें ले लिया है, जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करनेके लिए एकान्तका सेवन करता है और पवित्र मार्गोंमें लगानेके लिए अपने मनको सफलताके साथ झुका लेता है, ऐसे मनुष्यको पुस्तक, धर्म्मगुरु या मन्दिरकी सहायताकी आवश्य-कता नहीं है। मन्दिर आदि पवित्रात्माके आनन्द-विहारके लिए नहीं किन्तु पापीकी उन्नतिके लिए हैं ।

मनुष्य, जीवनकी कठिनाइयों और लालसाओंका सामना करनेके

लिए शक्ति, उनको समझनेके लिए शान्ति, उनको परास्त करनेके लिए ज्ञान और उनपर अधिकार पानेके लिए बुद्धि एकान्तमें संचित करता है। जैसे उस नीवसे जो भूमिमें अदृष्ट रहती है मकान सहायता पाता और सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने एकान्तवासमें उत्पन्न किये हुए तीव्र और गहन विचारोंके द्वारा, जो शारीरिक नेत्रोंसे देखनेमें नही आसकती उस शक्ति और शान्तिको, स्थिर रखता है।

एकान्तहीमें मनुष्य अपने आपको पहिचान सकता और अपने यथार्थ स्वभाव और प्रकृतिकी शक्ति और सम्भावनाको जान सकता है। संसारके कोलाहलमें और परस्पर विरुद्ध इच्छाओंकी चिल्लाहटके मध्यमें आत्माकी वाणी सुनाई नही देती। एकान्तके बिना आध्यात्मिक उन्नति नही हो सकती।

ऐसे भी मनुष्य है जो अपने आपपर तीव्रतर दृष्टि डालनेसे घबराते और अपने आन्तरिक स्वरूपको पूर्णतया जाननेसे भयभीत होते हैं। वे इस बातसे डरते है कि एकान्तमें अपने विचारोंके अतिरिक्त और किसीके साथ नही रहना पड़ता और वहाँ उन्हें अपनी वासनाओंके भूत-प्रेतोंकी मानसिक छाया उपस्थित और दृष्टिगत होनेका भय रहता है। इस लिए वे केवल ऐसी ही जगह जाते है जहाँ विनोदका नाद तीव्र स्वरसे सुनाई देता है और जहाँ सत्यकी धिक्कारनेवाली वाणी उस कोलाहलमें डूबी रहती है। परन्तु जो सत्यसे स्नेह रखता है, जो बुद्धिमत्ताकी इच्छा और खोज करता है, वह एकान्तमें बहुत रहता है। वह अपने निजके स्वरूपको सम्पूर्णता और स्वच्छताके साथ देखेगा, कोलाहल और झूठे आनन्दके स्थानोंसे बचेगा और उस जगह जावेगा जहाँ सत्यकी मधुर और कोमल वाणी उसके अन्दर बोल सके और सुनाई दे सके।

मनुष्य संगतिके लिए बहुत फिरते हैं और नवीन आह्लादों और उत्तेजनाओंको बहुत खोजते हैं, परन्तु शान्तिसे परिचित नहीं हैं। विनोदोंके बहुतसे मार्गोंमें सुखको टटोलते फिरते हैं, परन्तु वे विश्रामको फिर भी नहीं नहीं पहुँचते। नाना प्रकारके हास्य और ज्वरपूर्ण प्रलापोंके द्वारा वे आनन्द और जीवनके पीछे भटकते हैं, परन्तु शोकातुर रहकर अश्रुपात ही करते हैं—मृत्युसे नहीं बचते।

स्वार्थप्रचुर आह्लादोंकी खोजमें जीवन-समुद्रपर बहते हुए मनुष्य समुद्रके प्रचण्ड वायु-वेगमें अर्थात् तूफानमें फँस जाते हैं। फिर बहुतसी टक्करें खाकर और क्लेश उठा कर वे रक्षाकी चट्टानपर पहुँचते हैं, जो उनके खुदके अस्तित्वके गम्भीर मौनमें वर्त्तमान है।

जब मनुष्य बाहरी उद्योग या परिश्रममें लगा हुआ रहता है, तब अपनी आध्यात्मिक शक्तिको हीन करता है। अपनी आभ्यन्तरिक शक्तिको पुनः पुष्ट करनेके लिए उसको एकान्तमें ध्यान करना पड़ता है। ऐसा करना इतना आवश्यक है कि जो इससे विमुख रहता है, वह प्रथम तो जीवनके सत्य ज्ञानको प्राप्त ही नहीं करता और यदि करता भी है, तो फिर खो देता है। वह उन सूक्ष्म और गहरी जड़ पकड़े हुए पापोंको यथार्थमें समझकर अधिकृत नहीं कर सकता है, जो बाहरसे पुण्य प्रतीत होते हैं और उच्च कोटिके बुद्धिमानोंके अतिरिक्त सब लोग जिनके 'बलि' बनते हैं।

" सच्ची महत्ता उसी मनुष्यमें होती है जो आन्तर्ध्यानकी निस्तब्ध घड़ियोंमें नम्र भावसे अपने आपपर सन्देह और श्रद्धा दोनों रखता है।"

जो सदा बाहरी उत्तेजनाओंमें फँसा हुआ रहता है, वह निराशा और शोकमें पड़ा रहता है। जहाँ जागतिक विलासोंका नाद बहुत

प्रबल होता है, वहीं हृदयशून्यता बहुत तीव्र और गहरी होती है। जिसका समस्त जीवन विलासोंकी लालसामें तो नहीं परन्तु सासारिक कार्यव्यग्रतामें फँसा हुआ है, जो दृष्ट पदार्थोंके परिवर्त्तनशील दृश्यसे ही अपना मतलब रखता है और जो एकान्तवासका सहारा लेकर स्थिर अस्तित्वके आन्तरिक और अदृष्ट संसारको नही देखता, वह मनुष्य भी ज्ञान और बुद्धिको नहीं पहुँचता और शून्यहृदय रहता है। वह संसारकी सहायता नहीं कर सकता—अपनी योग्य कामनाओंको बलि नहीं दे सकता। क्योंकि उसके पास देनेको कोई बलिभोजन है ही नहीं। उसका आध्यात्मिक भाण्डार शून्य है। परन्तु जो वस्तुओंकी सत्यताके निर्णयके लिए एकान्तका आह्वान करता है, जो अपनी इन्द्रियोंको अधिकृत करके अपनी इच्छाओंको शान्त करता है, वह मनुष्य दिन प्रतिदिन ज्ञान और बुद्धिका संचय करता है। वह संसारकी सहायता कर सकता है और सत्यके स्वरूपसे परिपूर्ण होकर रहता है, क्योंकि उसका आध्यात्मिक भाण्डार पुष्कल है। जितना वह कम होता है उतना ही समय समयपर भर दिया जाता है।

जब मनुष्य आभ्यन्तरिक यथार्थताओंके ध्यानमें रक्त रहता है, उस समय वह ज्ञान और पौरुप प्राप्त करता है। वह पुष्पकी नाईं सत्यके सर्वव्यापक प्रकाशकी ओर अपने आपको विकसित रखता है, जीवन प्रदान करनेवाली रश्मियोंको प्राप्त करता है और उनका पान करता है। वह ज्ञानके अजर झरनेके पास जाता है और उसके हृदयहृष्टकर जलसे अपनी प्यासको बुझाता है। ऐसा मनुष्य एकाग्र ध्यानसे एक घंटेमें जितना अधिक सत्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उतना एक वर्षके पुस्तक-पठनसे भी प्राप्त नही होता। अस्तित्व अपरिमित है,

ज्ञान अनन्त है और इसका उद्गमस्थान अटूट है । वह अपने अस्तित्वकी आन्तरिक गम्भीरतापर विश्वास करता है । वह स्वर्गीय विवेकके कदापि नहीं सूखनेवाले झरनेके जलसे अजरताका पान करता है।

प्रतिभाशाली वही है, जो अस्तित्वकी वास्तविकताओंके साथ संयोग करनेका स्वभाव डाल लेता है और जीवनके जलका शाश्वत उद्गमस्थानपर बारंबार पान करता है । कुशाग्रबुद्धिके संचयप्रकार अटूट और असंख्य हैं, क्योंकि वे सर्वव्यापक और प्राथमिक द्वार हैं और इसी कारण कुशाग्रबुद्धिके कार्य नवीन और ताजा होते हैं । कुशाग्रबुद्धि दूसरोंको जितना अधिक ज्ञान देता है, उतना ही वह स्वयं पूर्ण होता है । उसके प्रत्येक कार्यके सम्पूर्ण होनेपर उसका मस्तिष्क विस्तृत और वृद्धिगत होता है । वह वस्तुओंके मर्म्म तक बहुत अधिक पहुँचता और शक्तिकी अधिकसे अधिक सीमाको देखता है । कुशाग्रबुद्धि ज्ञानसे प्रचुर रहता है । वह अन्त और अनन्तके अन्तरको एक कर लेता है । उसके लिए साधारण सहायक प्रयोगोंकी आवश्यकता नहीं है । वह केवल उसी सर्वव्यापक झरनेसे अपने ज्ञानका जल खींचता है, जो प्रत्येक सुयोग्य कार्यका द्वार है। कुशाग्रबुद्धि और साधारण मनुष्यमें यह अन्तर है:—वह आभ्यन्तरिक यथार्थतामें वास करता है और साधारण मनुष्य बाहरी दृश्योंमें रहता है । साधारण जन विनोद-आह्लादोंके लिए भटकता है और वह बुद्धिसंचयके लिए फिरता है । एक पुस्तकोंपर निर्भर रहता है और दूसरा अपने आन्तरिक अस्तित्वपर अवलम्बित रहता है । पुस्तक-ज्ञान अच्छा है, परन्तु इसकी यथार्थ आवश्यकता समझ लेनी चाहिए। बस, यह उसी श्रेणी तक अच्छा है । यह बुद्धिको उत्पन्न नही करता । बुद्धिका संचय-द्वार तो स्वयं जीवनहीमें है और यह अभ्यास

और अनुभवसे प्राप्त होता है। पुस्तकें हमें समाचार देती हैं, परन्तु वे ज्ञान नहीं दे सकतीं। वे हमारी ज्ञान प्राप्त करनेकी गतिको तेज कर सकती हैं, परन्तु ज्ञानसम्पादन नहीं करा सकतीं। इसके लिए हमें स्वयं श्रम करना चाहिए। वह मनुष्य जो केवल पुस्तकोंपर अवलम्बित रहता है और अपने अन्दरके मौन संचय-द्वारको नहीं पहुँचता, उसका श्रम व्यर्थ है और वह शीघ्र ही थक जाता है। उसकी ओर ज्ञान नहीं खिचता, चाहे वह कितना ही चतुर क्यों न हो। वह अपने समाचारोंके भाडार (अर्थात् पुस्तकोंके अन्त) तक शीघ्र पहुँच जाता है, फिर शून्य हो जाता है और उन्हीं समाचारोंकी बारम्बार आवृत्ति किया करता है। उसके कार्यमें जीवनकी मधुर स्वच्छन्दता और नवीनता नहीं रहती। ऐसा मनुष्य ज्ञानप्राप्तिके अनन्त मार्गोंसे अपने आपको हटा लेता है और वह जीवनके साथ नहीं किन्तु मृत या नाशमान् दृश्योंके साथ व्यवहार करता है। समाचार समाप्त हो जाते हैं, परन्तु ज्ञान समाप्त नहीं होता।

चमत्कृत् बुद्धि और महत्त्वकी प्राप्ति एकान्तमें पुष्ट, विकसित, और सम्पूर्ण होती है। साधारणसे साधारण पुरुष भी यदि एकान्तमें अपनी शक्तियों और मनोबलको संकलित करके अपने सुयोग्य इष्ट कर्म्मपर विचार करके उसको ऊँचा ले, तो वह अपनी इष्ट कामनाको सिद्ध कर लेता है और कुशाग्रबुद्धि बन जाता है। वह मनुष्य जो सासारिक विनोदोंको त्यागकर सर्वजनप्रियता और प्रशंसासे मुख फेरकर मानवजातिके हितार्थ किसी महत् आदर्शको सम्पूर्ण करनेके लिए एकान्तमें विचार और कार्य करता है, वह भविष्यदर्शी (भावदर्शी) और सिद्ध हो जाता है। वह मनुष्य जो चुपचाप अपने हृदयको मधुर, पवित्र, सुन्दर और श्रेष्ठ बनाता रहता है, जो

एकान्तमें चिरकालपर्यंत ध्यान लगाकर वस्तुओंका आन्तरिक और अमर निर्णय करता है, वह अस्तित्वके न सुनाई देनेवाले सुरीलेपनसे समान स्वर हो जाता है, सार्वजनिक गीतका स्वागत करनेके लिए अपने हृदयको खोल देता है और अन्तमें कवि बन जाता है।

सर्व प्रकारकी कुशाग्रबुद्धिकी एक ही स्थिति है। यह एकान्तका एक स्वच्छहृदय, खुले नेत्र रखनेवाला और सुननेवाला सुन्दर बालक है। परन्तु कोलाहल-मुग्ध संसार जिसको वह कुशाग्रबुद्धि मौनके सुरक्षित द्वारसे कभी कभी ही देखता है उसके भेदको नहीं समझता है।

सेण्ट पाल जो अन्य धर्म्मावलम्बियोंपर क्रूर आक्रमण किया करता था और अपने धर्म्मका अन्धा पक्षपाती था. वनमें तीन वर्ष पर्यंत अकेला रहकर एक प्रेमप्रचुर धर्म्मदूत और भावदर्शी सिद्ध हो गया। सिद्धार्थ गौतम जो पहले एक साधारण राजकुमार था, जंगलमें छः वर्ष तक अपनी इन्द्रियोंसे घोर संग्राम करके अपने अस्तित्वके गम्भीर भेदोंपर तीव्र ध्यान लगाकर प्रकाशयुक्त, शान्तिस्वरूप, मधुर, ज्ञानी बुद्ध हो गया, जिसके पास पिपासितहृदय संसार अजरताका ताजा जल पीनेके लिए आने लगा। लाऊजी जैसे एक साधारण मनुष्यने ज्ञानकी खोजमें एकान्तवास स्वीकार किया और वहाँ उसने परमात्माको पाया जिससे वह संसारका शिक्षक और गुरु हो गया। ईसामसीह —जो बिना पढ़ा लिखा बढ़ई था—बहुत वर्षोंतक पहाड़ोंपर एकान्तमें अनन्त प्रेम और बुद्धिमें ध्यान लगाकर मनुष्यजातिका कल्याणकर्त्ता हो गया।

ये महात्मा पवित्र और स्वर्गीय ज्ञानके उन्नत शिखरोंपर पहुँच जानेके पश्चात् भी बहुधा अकेले रहते थे और समय समयपर बारम्बार एकान्तमें चले जाया करते थे। महापुरुषसे भी महापुरुष यदि अपनी

आन्तरिक शक्तिकी वारम्वार पुष्टि—जो केवल एकान्तहीमें हो सकती है—नहीं करे, तो अपनी आध्यात्मिक उन्नतिसे पतित हो जायगा और अपना प्रभाव खो वैठेगा। अपने विचारों और अपने भीतरकी उत्पादक शक्तियोंको अन्तःकरणसे समान करके, अपने अस्तित्वको अधिकारमें लाकर और सर्वव्यापक इच्छामें अपनी खुदकी तुच्छ इच्छाको डुवाकर इन जगद्गुरुओंने अनुपम शक्ति प्राप्त की और वे उत्पादक और कारणभूत विचारके प्रभु जगदुन्नत्तिके सर्वोत्तम कारण वन गये।

यह कोई कौतुक नहीं है, किन्तु एक नियम है। जैसे कानून-नीतिमें कोई गुप्त भेद नहीं है, उसी प्रकार उपर्युक्त महात्माओंके जीवनमें भी कोई कुतूहल नहीं है। प्रत्येक स्थितिमें उस शक्तिका तौल वरावर नहीं रक्खा जा सकता है। ऐसी शक्ति वहुत वर्षोतक वारम्वार एकान्तका सेवन करनेसे ही आती है।

मनुष्यका सत्य वासस्थान महान् मौनमें है। जो कुछ उसके अन्दर सत्य और स्थिर है, उसका उद्गमस्थान वही मौन है। तव भी मनुष्यका आधुनिक स्वभाव द्विविध है और इसलिए वाहरी कार्यप्रवृत्ति आवश्यक है। संसारमें न पूर्ण एकान्त सत्य जीवन है और न पूर्ण कार्यव्यग्रता। सर्व साधारणके लिए सत्य जीवन यह है कि एकान्तमें शक्ति और वुद्धिको वटोरे और सासारिक कार्य्योंको योग्यतासे सिद्ध करनेमें व्यय करे। जैसे मनुष्य दिनके अस्त होनेपर कामसे हारा थाका उस मधुर विश्राम और ताजगीके लिए घर आता है कि जिसके द्वारा वह आगामी दिन फिर परिश्रम कर सके, उसी प्रकार उस पुरुषको चाहिए—जो जीवनके कामसे कृशकाय नहीं होना चाहता—कि दुनियाके कारखाने-के कोलाहलमेंसे निकलकर थोड़े समय तक मौन और एकान्तके स्थिर

मन्दिरमें विश्राम ले। जो इस प्रकार प्रत्येक दिनका कुछ भाग पवित्र और उद्देश्यपूर्ण शान्त एकान्तमें लगाता है, वह शक्तिमान्, योग्य और आनन्दपूर्ण हो जाता है।

एकान्त शक्तिमानोंके लिए है, या उनके लिए है जो शक्तिमान् होनेके लिए बद्धपरिकर हैं। जैसे जैसे मनुष्य महत्त्वको प्राप्त होता जाता है वह अकेला रहने लगता है। वह खोजनेके लिए एकान्तमें जाता है और जिस वस्तुको खोजता है उसको प्राप्त करता है। ज्ञान बुद्धि, सत्य और शक्तिके लिए मार्ग हैं और वे खुले हुए हैं, परन्तु ये मार्ग शब्दशून्य एकान्त और मौनमेंसे होकर जाते हैं।

१२–स्वावलम्बन ।

जो अपने स्वच्छ हृदयमे प्रकाश रखता है वही मनुष्य सबके बीचमे बैठकर उज्ज्वल दिनका आनन्द भोग सकता है ।

यथाशक्ति अकेले रहनेका उपाय करो । अपने आपपर भरोसा करो । देखो कि तुम्हारी आत्मा क्या पहने हुए है । —जार्ज हर्बर्ट ।

आनन्दके जीवनमें स्वावलंबन अत्यन्त आवश्यक है । शान्तिके लिए शक्ति चाहिए । सुरक्षितताके लिए स्थिरता चाहिए । स्थायी आनन्दके ऐसे पदार्थोंपर अवलम्बित नहीं रहना चाहिए जो हमसे चाहे जब छीने जा सकते हों ।

जब तक मनुष्य अपने भीतरके उस स्थिर केन्द्रको नही प्राप्त कर लेता जिस पर कि वह ठहर सके, जिससे वह अपने जीवनको नियन्त्रित कर सके और जिससे उसको शान्ति मिल सके, तब तक वह अपने जीवनको सत्य रूपसे आरम्भ नहीं करता । यदि वह उस वस्तुका विश्वास करे जो परिवर्त्तनशील है, तो वह स्वयं भी बदलता रहेगा । यदि वह ऐसी वस्तुका सहारा लेगा, जो उससे पृथक् की जा सकती है, तो उस वस्तुके हटाते ही गिर जायगा और चोट खायगा । यदि वह नाशमती प्राप्तियोंपर सन्तोष करेगा, तो उसके पास सब कुछ होते हुए भी वह आनन्दकी भूखसे भूखों मरेगा । इस

लिए मनुष्यको चाहिए कि वह न दूसरोंकी सहायताकी प्रतीक्षा करे, न उनसे पुरस्कार पानेकी इच्छा रक्खे, और न दूसरे स्वार्थिक लाभोंकी लालसा करे। उसे न माँगना चाहिए, न दोष लगाना चाहिए और न पश्चात्ताप करना चाहिए; प्रत्युत अपने भीतरी सत्यका अवलम्बन और अपने हृदयके खरेपनपर सन्तोष करते हुए अपने बल अकेले खड़ा रहना चाहिए।

यदि मनुष्यको अपने अन्दर ही शान्ति नहीं मिली तो फिर और कहाँ मिलेगी? यदि अन्दर सब कुछ रखते हुए भी वह अकेला रहनेसे डरे, तो फिर बाहरकी संगतिसे क्या स्थिरता पावेगा? यदि वह अपने ही विचारोंमें ध्यान लगाकर आनन्द नहीं पाता, तो दूसरोंसे मिलकर दुःख और शोकसे कैसे बच सकेगा? जिस मनुष्यने अपने अन्दर ऐसा सहारा नहीं पाया है जिसके बल वह खड़ा रह सके, वह कहीं भी स्थायी विश्राम नहीं पा सकेगा।

मनुष्य सर्वत्र इस मिथ्या विश्वाससे धोखा खाते हैं कि उनका सुख दूसरे मनुष्यों और दूसरे पदार्थोंपर अवलम्बित है और इसी लिए वे सदैव निराशा, शोक और पश्चात्तापमें मग्न रहते हैं। वह मनुष्य–प्रत्येक दशामें स्वावलम्बी और मधुर स्वभाव होगा, जो अपने सुखके लिए अन्य पुरुषों या बाह्य वस्तुओंपर निर्भर नहीं रहकर अपने हृदयरूपी घेरेके भीतर ही सुखका असीम भाण्डार खोज लेता है और दु:ख शोकका असहाय बलि कभी न बनेगा। जो सहायताके लिए दूसरोंकी ओर देखता है, जो अपने सुखको, अपने नहीं किन्तु दूसरोंके चरितसे तौलता है और जो अपने मनकी शान्तिके लिए दूसरोंकी सहायतापर अवलम्बित रहता है, समझना चाहिए कि उस मनुष्यके आध्यात्मिक पैर नहीं हैं, उसका मस्तिष्क बाह्य जगतके परिवर्त्तनोंके साथ इधर

उधर भटकता है और विपत्ति तथा अविश्रामसे परिपूर्ण होकर समुद्रकी लहरोंकी तरह चंचल रहता है। ऐसा मनुष्य आध्यात्मिक पंगु होता है। उसे अपने मनको तुला हुआ रखना सीखना चाहिए, जिससे वह बिना डंडोंके सहारे चल सके और अवशिष्ट जीवनमें लंगड़ा बना हुआ न फिरे।

जैसे शिशु एक स्थानसे दूसरे स्थान तक दूसरोंकी सहायताके बिना अपने बलसे चलना सीखता है, उसी प्रकार मनुष्यको चाहिए कि वह अपने मानसिक पैरोंपर खड़ा रहना सीखे, अर्थात् अपने आप विचार और कार्य्य करना सीखे और अपने मस्तिष्ककी शक्तिसे उस मार्गको खोजे जिसपर उसको चलना है। बाहर परिवर्त्तन, नाश, और अरक्षितता है और अन्दर सुरक्षितता और आनन्द है। आत्मा स्वयं पर्याप्त है। जहाँ आवश्यकता होती है, वहाँ उसकी पूर्तिके भी बहुतसे साधन निकल आते हैं। तुम्हारा अमर वासस्थान तुम्हारे ही अन्दर है। वहाँ जाओ और अपने मकानपर अधिकार जमाओ। वहाँ तुम राजा हो और अन्यत्र दास हो। दूसरे अपने अपने छोटे राज्यमें चाहे सुप्रबन्ध रक्खें या कुप्रबन्ध, इससे तुम तटस्थ रहो। तुम तो केवल इसी बातका खयाल रक्खो कि तुम स्वयं अपने हृदयपर भले प्रकार राज्य कर रहे हो या नहीं। स्वयं तुम्हारा और अखिल संसारका कल्याण तुम्हारे हृदयमें है। तुम्हारे अन्तःकरण है, तुम उसके अनुयायी बनो। तुम्हारे मस्तिष्क है, तुम उसको स्वच्छ करो। तुम्हारे निर्णयबुद्धि है, उसको काममें लाओ और बढ़ाओ। तुम्हारे इच्छाशक्ति है, उसका उपयोग करो और उसको उन्नत करो। तुम्हारे पास ज्ञान है, उसकी वृद्धि करो। तुम्हारी आत्मामें प्रकाश है, उसपर दृष्टि रक्खो, उसे पुष्ट करो, बढ़ाओ और क्रोधादिके प्रचंड वेगोंसे बचाओ।

उसकी अचल ज्योति निरन्तर वृद्धिगत होती रहे, ऐसा यत्न करो। बाह्य जगतको छोड़कर अपने आत्मामें आओ। आदर्श मनुष्यकी तरह विचार करो, मनुष्यकी तरह कार्य करो और मनुष्यकी तरह जीवन व्यतीत करो। अपने आपके धनी बनो और स्वयं सम्पूर्ण रहो। तुम्हारे अन्दर जो स्थायी केन्द्र है उसको ढूँढ़ो और उसकी आज्ञा मानो। पृथ्वीका गोला सूर्यको अपना केन्द्र बनाये रख कर चलता है। उसी प्रकार तुम्हारे अन्दर जो प्रकाशका केन्द्र है उसकी आज्ञापर चलो। तुम्हारे अन्दरके प्रकाशको दूसरे लोग यदि अन्धकार बतावें तो बताने दो। तुम केवल अपने लिए उत्तरदायी हो, इस लिए अपने आपपर विश्वास करो। यदि अपने आपसे डरोगे, तो तुमपर दूसरे कैसे विश्वास करेंगे ? यदि तुम अपने खुदके लिए सच्चे नहीं हो, तो तुम्हें सत्यका मधुर सन्तोष और कहाँ मिलेगा ?

महापुरुष स्वतन्त्र मनुष्यत्वके सरल महत्त्वके साथ अकेला खड़ा रहता है। वह अपने मार्गपर बिना भयके चलता है और दूसरोंसे व्यर्थ क्षमा नहीं चाहता। वह प्रशंसा और निन्दा दोनोंहीको, बाहर घूमने फिरनेसे कपड़ोंपर जो धूल जम जाती है और झाड़ पोंछ कर अलग कर दी जाती है उसके समान, समझता है। वह मनुष्योंकी परिवर्त्तनशील अनुमतियोंके अनुसार नहीं चलता किन्तु अपने मस्तिष्कके प्रकाशके सहारेपर चलता है। बहुतसे लोग मिथ्या प्रशंसा और लोकरीति या फेशनके हेतु अपने मनुष्यत्वको बेच देते हैं।

जब तक तुम भूत-प्रेतों देवी-देवताओं और मनुष्योंके अनुशासनके (निगरानीके) मिथ्या विश्वासको छोड़कर अपने आन्तरिक सत्य-प्रकाशपर अपने आप, एकाकी, नहीं खड़े रह सकते, तब तक बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र और पूर्ण आनन्दित नहीं हो सकते। परन्तु

आत्माभिमानको स्वावलम्बन नहीं समझ लेना चाहिए । क्योंकि अभि-मानकी विनाशशील नीव (Foundation) पर खड़ा रहना गिर पड़ना है । जितना घमंडी पुरुष दूसरोंपर अवलम्बित रहता है उतना और कोई नहीं रहता । दूसरे लोग उसकी जो प्रशंसा करते हैं उसको वह अमृतकी नाईं पीता रहता है, परन्तु जो बुराई करते हैं उससे रुष्ट होता है । मिथ्या खुशामदको वह निर्दोष विचार समझ लेता है और दूसरोंकी अनुमतियोंसे तत्क्षण ही कभी रुष्ट और कभी प्रसन्न होता है । इस तरह उसका सुख दूसरोंके हाथोंमें रहता है । परन्तु स्वावलम्बी मनुष्य अभिमानपर नहीं, किन्तु अन्दरके स्थायी नियम, सिद्धान्त, आदर्श और सत्यपर खड़ा रहता है । इसीपर वह अपने आपको ठहरा हुआ रखता है और आन्तरिक उद्वेगकी लहरों या बाहरी निन्दास्तुतिके तूफानोंके कारण अपनी मजबूत बुनियादसे नहीं हटता । यदि किसी समय वह डिग भी जाता है, तो सँभल जाता है और अपनी वास्तविक स्थितिको प्राप्त कर लेता है ।

तुम अपने मानसिक तराजूका बीच खोजो और उसपर अकेले स्थिर हो जाओ । इससे तुम अपने जीवन-कार्योंमें अवश्य सफलता पाओगे । जिस कामपर तुम अपना मस्तिष्क लगाओगे उसको अवश्य कर लोगे । क्योंकि वास्तविक स्वावलम्बी मनुष्य अजेय (अजीत) होता है । दूसरोंके सहारे न खड़े रहनेका यह अर्थ नहीं है कि तुम उनसे कुछ सीखो ही नहीं । नहीं, अपने ज्ञानके बढ़ा-नेसे कभी मत हटो । जो भली और उपयोगी बात हो, उसको ग्रहण करनेके लिए सदैव कटिबद्ध रहो । नम्रता और विनय कभी पर्याप्त नहीं होते । अर्थात् ये जितने अधिक हों, उतने अच्छे । मनुष्य जितना अधिक स्वावलम्बी होता है, उतना ही नम्र और विनीत होता है ।

महात्माकी आत्म-प्रतिष्ठाके बराबर किसी भी राजा महाराजा और रईसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। वह इतना नम्र क्यों होता है? वह जानता है कि मेरे अन्दर जो ईश्वरीय महत्त्व है, उसके कारण मैं नम्र रह सकता हूँ। सब मनुष्योंसे शिक्षा ग्रहण करो, विशेषकर सत्यके गुरुओंसे; परन्तु इस सत्यको स्मरण रक्खो कि अन्तिम अनुशासन तुम्हारे अन्दर ही है, कहीं बाहर नहीं। गुरु यह कह सकता है कि 'सत्यमार्ग यह है' परन्तु वह तुम्हें उसपर चलने या न चलनेको बाध्य नहीं कर सकता। तुम स्वयं प्रयत्न करो, अपने पुरुषार्थसे ज्ञान प्राप्त करो और स्वयं अपने कामसे उस गुरुके सत्यको अपना सत्य बनाओ। तुम्हें अपने आपपर खूब विश्वास रखना चाहिए।

"अपने बलसे मनुष्य बनना, अपनी आत्मशक्तिसे महत्त्वको प्राप्त करना और प्रकाशयुक्त जीवन व्यतीत करना, यही ऐश्वर्य है।"

तुम्हें स्वयं अपना स्वामी बनना है। तुम अपने आपपर सरदार बनो। खुशामद और नकल मत करो, बल्कि अपनेको संसारका एक प्रधान और जीवित भाग समझकर कार्य करो। प्रेम दूसरोंको प्रदान करो, उसे उनसे पानेकी आशा मत करो। दूसरोंके साथ सहानुभूति रक्खो, ऐसी लालसा मत रक्खो कि वे तुम्हारे साथ सहानुभूति रक्खें। दूसरोंकी सहायता करो; परन्तु उनकी सहायताका सहारा मत लो। यदि लोग तुम्हारे कार्यकी निन्दा करते हों, तो इसकी परवाह मत करो, केवल इसीसे संतुष्ट रहो कि मेरा कार्य है। यह न पूछो कि "क्या मेरा कार्य लोगोंको रुचिदायक होगा?" बल्कि यह पूछो कि "क्या मेरा कार्य सच्चा और यथार्थ है?" यदि तुम्हारा कार्य सत्य है, तो उसे किसीका भी नाश न छू सकेगा और यदि असत्य है, तो दूसरोंके नापसंद करनेके पूर्व ही वह स्वयं नष्ट हो जावेगा।

सत्यके वचन और कार्य जब तक कर्त्तव्य सम्पूर्ण नहीं हो लेता, व्यतीत नहीं हो सकते। परन्तु असत्यके वचन और कार्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि उनको वास्तवमें कुछ करना ही नहीं है। तर्क और रुष्टता (नाराज़ी) दोनों ही व्यर्थ है।

पहले तुम अपने आपको स्वतः स्वीकृत परतन्त्रताकी गुलामीसे मुक्त करो और संसारके किसी पृथक् किये हुए पदार्थकी तरह नहीं बल्कि उसके एक उपयोगी भागकी तरह अकेले खड़े रहो। भले प्रकार कमाई हुई स्वतन्त्रतासे उत्पन्न होनेवाले हर्षको, विवेकयुक्त आत्माधिकारसे बढ़ी हुई शान्तिको और नैसर्गिक शक्तिमें रहनेवाले आनन्दको प्राप्त करो।

वह मनुष्य यथार्थमें पूज्य है जो एकाकी और स्वयं सम्पूर्ण होकर मरघट तक अपना मार्ग आप रचता है और जो लोकापवाद या प्रशंसाकी परवाह न करके सन्देह-स्थानोंमें केवल अपनी आत्माका सहारा लेता है।

१३-जीवनके साधारण नियमोंको समझना।

यदि सत्यके सिद्धान्त और उसकी उत्पत्तिको बारीकीसे निरीक्षण करोगे, तो तुम उसे अपने अन्दरसे निकला और विकसित हुआ पाओगे।

—ब्राउनिंग।

रत्नोंकी अपेक्षा धर्मका भाण्डार अधिक बहुमूल्य है। मधुसे यह मधुरतर है। इसका रसानन्द अकथनीय और अतुलीय है।

—दि लाइट आफ एशिया।

पथिक उन आनन्दकी पगडंडियोंपर चलते हुए जो अब तक बताई जा चुकी हैं, उनके सौन्दर्यमें विश्राम लेते हुए, उनके रसानन्दका पान करते हुए, यथासमय जीवनके विस्तृत मार्गके उस स्थानपर पहुँच जायगा, जहाँ उसका अन्तिम भार उसके सिरपरसे उतर जायगा, उसकी अस्वस्थता जाती रहेगी, उसे हलकी स्वतन्त्रता मिल जायगी और वह स्थायी शान्तिमें विश्राम करेगा। इन सब आध्यात्मिक आनन्दकी पगडंडियोंमें शक्ति और आरामको उत्पन्न करनेवाली सबसे श्रेष्ठ पगडंडी जीवनके साधारण नियमोंको भले प्रकार समझ लेना है। जो उसको पा लेता है वह सारी न्यूनतायें और लालसायें, सन्देह और घबराहटें, दुःख और अनिश्चय अपने पीछे छोड़ देता है। वह पूर्ण सन्तोष, प्रकाश, ज्ञान, हर्ष और निश्चयमें रहता है। जो

जीवनकी सरलताको समझ लेता, जो इसके नियमोंकी आज्ञा पालन करता और जो स्वार्थपूर्ण इच्छाओंके अन्धेरे मार्गों और पेचदार गलियोंमें पैर नहीं रखता, वह ऐसे स्थानपर खड़ा है जहाँ उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती, जहाँ उसको कोई भी शत्रु मार नहीं सकता और जहाँ उसको किसी प्रकारके सन्देह, लालसायें और दुःख नहीं होते। जहाँ सत्यका आरम्भ होता है, वहाँ सन्देह समाप्त होता है। जहाँ स्थायी और सम्पूर्ण हर्ष होता है, वहाँ दुःखदायक लालसा नहीं रहती और जब अजर और अमर आनन्द प्राप्त हो जाता है, तब फिर दुःखके लिए वहाँ कोई स्थान नहीं रहता है।

मानुषिक जीवन यदि सत्य प्रकार साधा जावे, तो बिल्कुल सुन्दर और सीधा है, परन्तु जब तक यह लोभ, इन्द्रियलोलुपता और लालसाओंकी रस्सियोंसे जकड़ा हुआ रहता है, तब तक सत्य प्रकार नहीं साधा जाता। ऐसा जीवन सत्य जीवन नहीं है, बल्कि एक प्रज्वलित ज्वर और दुःखदायक रोग है जो मस्तिष्ककी प्रकाशहीन दशाके कारण उत्पन्न होता है। इच्छाओंका घटाना बुद्धिमत्ताका आरम्भ है और उनपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना बुद्धिमत्ताकी पराकाष्ठा है। इसका कारण यह है कि जीवन नियमोंसे बँधा हुआ है और नियमोंसे पृथक् न होनेके कारण जीवनको जिन सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति अब तक नहीं हुई है उनकी आवश्यकता नहीं है। उदाहरणके लिए देखो कि लालसा या इच्छा आवश्यकता नहीं बल्कि एक विद्रोहयुक्त स्वार्थता है और इस लिए वह हीनता और दुःखकी जननी है। बाइबलमें एक कपूत बेटेकी कहानी लिखी है। बापके घरमें पुत्रके लिए सब कुछ वर्त्तमान था, बल्कि उसकी आवश्यकतासे भी अधिक था; परन्तु वह घर छोड़कर चला गया। अब देखना चाहिए कि सब

वस्तुओंकी बहुलता होते हुए उसे लालसा आवश्यक नहीं थी। परन्तु जब लालसा उसके हृदयमें घुसी, तो वह दूर विदेशमें चला गया और वहाँ उसे हरएक वस्तुकी आवश्यकता हो गई। जब वह बहुत तंग आ गया और भूखों मरने लगा, तब उसे बापके घरकी ओर मुड़नेकी उत्कंठा हुई। यह कहानी मनुष्य और मनुष्य-जातिके परिवर्त्तनका एक अनुपम दृष्टांत है। मनुष्य इच्छाओंके पेचमें ऐसा फँस जाता है कि वह लगातार अशान्ति, असन्तोष, आवश्यकता और क्लेशमें रहता है और उसकी एक मात्र चिकित्सा बापके घर चला जाना, अर्थात् लालसाको छोड़कर यथार्थ और सत्य जीवनका सेवन करना है। परन्तु जब तक मनुष्य आध्यात्मिक दरिद्रतासे भूखों मरकर खूब तंग नहीं आ जाता, तब तक ऐसा नहीं करता। पहले लालसाके फल अर्थात् दु:ख और कलहका अनुभव कर चुकनेपर फिर शान्ति और पुष्कलताके सत्य जीवनकी ओर उत्कंठा बढ़ती है। तब आगे बढ़नेसे अपना मुँह फेरकर वह अपने घरकी ओरकी श्रमपूर्ण यात्रा करने लगता है, अर्थात् उस साधारण अस्तित्वके बहुमूल्य जीवनकी ओर पैर बढ़ाने लगता है जिसमें लालसाके दासत्व, ज्वर और बुभुक्षासे छुटकारा मिले। वास्तविक जीवन, सत्य और सारताके लिए जो इस प्रकार अभिलाषा होती है उसे, और लालसाको, एक ही नहीं समझ लेना चाहिए। वह अभिलाषा है। लालसा विषय-भोग आदिकी प्राप्तिके लिए होती है और अभिलाषा शान्तिके लिए हृदयकी भूख है। सांसारिक पदार्थोंकी लालसा जितनी जितनी बढ़ती जाती है, उतनी ही वह हमें शान्तिसे अधिकाधिक दूर हटाती जाती है और अन्तमें न केवल हमें ही दरिद्री बनाती है किन्तु स्वयं भी सदैव असमाप्त और असन्तुष्ट रहती है। जब तक लालसाकी समाप्ति नहीं होती, तब तक

विश्राम और सन्तोष असम्भव हैं। सासारिक पदार्थोंकी भूख कभी सन्तुष्ट नहीं होती, परन्तु शान्तिकी भूख तृप्त हो सकती है और जब सर्व प्रकारकी स्वार्थिक लालसायें छूट जाती हैं, तो शान्तिका सन्तोष सम्पूर्णतासे प्राप्त हो जाता है। फिर पूर्ण हर्ष, पुष्कलता और बहुमूल्य आनन्द विद्यमान रहते हैं। इस अत्यंत आनन्दकी स्थितिमें जीवनकी पूर्ण सुघड़ता और सरलता समझमें आ जाती है और शक्ति तथा उपयोगिता प्राप्त हो जाती है। अन्तमें शान्तिकी भूख भी समाप्त हो जाती है। क्योंकि पूर्ण शान्ति स्थिर और स्थायी होकर शरीर और मनकी एक साधारण दशा हो जाती है। वासनाओंमें डूबा हुआ मनुष्य अज्ञानतासे विचार करता है कि लालसाका दमन, उदासीनता, आलस्य, शक्तिकी हानि, और निर्जीवपन उत्पन्न करता है; परंतु इसके विपरीत यह संयम, एकाग्रता, कार्यपरायणता, शक्ति, उपयोगिता और एक ऐसे बहुमूल्य, प्रशंसनीय तथा आनन्दमय जीवनको प्राप्त कराता है कि उन लोगोंकी समझमें ही नहीं आता जो भोग-विलास और वस्तु-प्राप्तियोंके लिए भूखे मर रहे हैं।

स्वार्थयुक्त लालसासे मुक्त होनेपर मनुष्यका मस्तिष्क हलका हो जाता है और वह मानव जातिके लिए कार्य करनेको स्वतन्त्र हो जाता है। तब उसकी शक्तियाँ उन भोगेच्छाओंकी प्राप्तिके लिए—जो कभी तृप्त ही नहीं होतीं—नहीं दौड़तीं और उसके पूर्ण अधिकार तथा आज्ञामें रहती हैं। पुरस्कार-प्राप्तिकी इच्छा न रखनेसे अपनी शक्तियोंको वह अपने कर्त्तव्योंके पूर्ण पालनमें एकत्रित कर देता है और सब बातों तथा कार्योंको सफलता और योग्यतासे सिद्ध करता है।

पूर्णज्ञानी और पूर्ण आनन्दयुक्त मनुष्य लालसाके द्वारा कार्य करने-

को उद्यत नहीं होता बल्कि ज्ञानके लिए होता है। लालसा रखनेवाला मनुष्य कार्यको तब ही करता है, जब उसमें खुदका कुछ लाभ देखता है। जैसे बच्चा खिलौना लेनेके लिए पढ़ता है, उसी प्रकार वह मनुष्य पुरस्कारके हेतु कार्य करता है; परन्तु सुजीवित और सुशक्त ज्ञानी पुरुष अपनी शक्तियोंको चाहे जब, चाहे जिस आवश्यक कार्यके सम्पादनके लिए एकत्र करके प्रयोगमें ला सकता है। वह आध्यात्मिकताके हिसाबसे पूर्ण वृद्ध मनुष्य है। उसके लिए सर्वप्रकारके उपहार और पारितोषक व्यर्थ हैं। उसके लिए सर्व प्रकारकी घटनायें अच्छी हैं। वह सदैव पूर्ण सन्तोषयुक्त रहता है। ऐसा मनुष्य आदर्श जीवन प्राप्त करता है और उसका हर्ष मधुर, स्थिर, यथार्थ और अटल नियमके अनुसार होता है। परन्तु अत्यंत आनन्दका ऐसा जीवन एक प्रकारकी सीमा है। उस यात्रीको—जो इसकी ओर जानेकी चेष्टा करता है—यात्रा और परिश्रम करना चाहिए। उसे पाशविक लालसाओंके देशमें होकर जाते हुए, उनके पेचों और जालोंसे अपने आपको पृथक् रखते हुए, उनको सरल करते हुए और उनपर अधिकार जमाते हुए यात्रा करनी पड़ती है। उसके इस मार्गमें बाहरका कोई शत्रु नहीं है, जो हैं वे उसके अन्दर ही उत्पन्न होते हैं। आरम्भमें यह मार्ग बहुत कठिन प्रतीत होता है। वह लालसासे अन्धा होकर जीवनकी साधारण बनावटको नहीं देखता और इसके नियम उससे गुप्त रहते हैं; परन्तु जब उसका मन सरलतर और स्वच्छतर हो जाता है, तब जीवनके सीधे नियम उसकी आध्यात्मिक दृष्टिमें आने लगते हैं और वह उस स्थानपर पहुँच जाता है जहाँ उसे उन नियमोंको समझने और उनकी आज्ञाके अनुसार चलनेमें कठिनाई नहीं प्रतीत होती। फिर मार्ग सादा और आसान हो जाता है। तब सन्दि-

ग्धता और अन्धकार नहीं रहते और ज्ञानके प्रकाशसे सब कुछ दिखने लगता है।

सत्य और आनन्दमय जीवनकी खोज करनेवाले मनुष्यकी गतिको और भी तेज करनेमें सहायता देनेवाले जीवनके उन साधारण नियमोंमेंसे कुछ नियमोंपर हम नीचे विचार करते है। ये नियम प्रयोगमें बिल्कुल गणितके नियमोंकी नांई अबाधित हैं। "प्राथमिक नियम (उल्लंघन करनेवालेको) कभी क्षमा नहीं करते।"

समस्त जीवन एक है, यद्यपि इसके दर्शन कई प्रकारसे होते है। नियम एक है, परन्तु वह कई प्रकारसे उपयोग और प्रयोगमें आता है। वस्तु और मनके लिए पृथक् नियम नही है। स्थूल और दृष्ट पदार्थों और सूक्ष्म और अदृष्ट पदार्थोंक लिए जुदा जुदा नियम नही है। सूक्ष्म नियम सर्वत्र एक है। शरीरके लिए एक प्रकारका और आत्माके लिए दूसरे प्रकारका तर्कशास्त्र नहीं है; एक ही है। मनुष्य शुद्ध सासारिक बुद्धिमत्तासे सासारिक कामोंमें कुछ नियम या रीतियाँ देखते हैं और जानते है कि इन नियमोंको भूलना या इनका उल्लंघन करना हमारी मूर्खता होगी और वह हमारे लिए हानि तथा समाज और राज्यके लिए गड़बड़ उत्पन्न करेगी। परन्तु वे भूल करते है और यह नहीं सोचते कि वे ही नियम आध्यात्मिक और सूक्ष्म वस्तुओंमें भी लगते हैं। अपनी अज्ञानता और असावधानीके कारण वे हानि उठाते हैं।

संसारका यह नियम है कि मनुष्य अपने आपका पालन पोषण करे, अपने हाथोंसे कमावे और जो काम नही करे उसको भोजन पानेका कोई अधिकार नही है। मनुष्य इस नियमको देखते हैं, इसको अच्छा और न्यायसंयुक्त मानते हैं और इस लिए संसारकी आवश्यक वस्तुओंको अर्जन करते हैं। परन्तु आध्यात्मिक वस्तुओंके

विषयमें वे इस नियमका प्रयोग नहीं करते। वे यह तो विचारते हैं कि मनुष्यको अपनी रोटी कमाना बहुत ही उचित है और वे यह भी मानते हैं कि जो इस नियमसे घबराता है, वह फटे वस्त्र पहिनता और दर दर भीख माँगता फिरता है। परन्तु वे इसे उचित समझ लेते हैं कि मनुष्य आध्यात्मिक रोटीके लिए भीख माँगे और योग्य बने बिना और परिश्रम किये और कमाये बिना ही उसे प्राप्त कर ले। इसका फल यह होता है कि बहुतसे मनुष्य आध्यात्मिक वस्तुओंके लिए भिखारी बने फिरते हैं, अर्थात्, आन्तरिक शक्ति, हर्ष, ज्ञान, और शान्ति न प्राप्त करके दुःख और क्लेशमें रहते हैं।

यदि तुम्हें किसी पदार्थकी—अन्न, वस्त्र, सामान, सजावट आदिकी—आवश्यकता होती है, तो तुम किसी व्यापारीकी दूकानपर जाकर उन्हें यों ही नहीं माँगने लगते हो, किन्तु पहले उनका मूल्य पूछते हो, फिर रुपया देते हो और तब वह सामान तुम्हारा होता है। तुम इसको बिलकुल उचित और योग्य समझते हो कि जितनी वस्तु लाई गई, उसकी ठीक कीमत दी गई और उसमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ा। आध्यात्मिक वस्तुओंमें भी ठीक यही नियम लगता है। तुम्हें यदि किसी भी आध्यात्मिक वस्तुकी—जैसे हर्ष, विश्वास, शान्ति आदिकी—आवश्यकता है, तो बदलेमें कुछ मूल्य दिये बिना तुम उसको अपने अधिकारमें कैसे कर सकते हो? तुमको उसकी कीमत अवश्य देनी होगी। जैसे तुम किसी स्थूल वस्तुको खरीदते हो, तो उसके लिए कुछ स्थूल चीज रुपया आदि बदलेमें देते हो, उसी प्रकार तुम्हें आध्यात्मिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए भी कोई सूक्ष्म वस्तु कीमतके तौर पर देनी चाहिए। कुछ न कुछ, जैसे उद्वेग लालच, अभिमान या भोग-विलास, जब तुम कीमतके तौरपर दे

चुकोगे, तब तुम्हें थोड़ीसी आध्यात्मिक प्राप्ति होगी। कृपण मनुष्य अपने धनसे चिपटा रहता है, उसमेंसे दूसरेको कुछ नहीं देता; क्योंकि धनको पास रखनेमें उसको आनन्द मिलता है। वह शरीरके आरामकी आवश्यक वस्तुयें नहीं खरीद करता। उसके पुष्कल धन होते हुए भी वह आवश्यक पदार्थ अपने पास नहीं रखता और कष्ट उठाता है। वह मनुष्य, जो क्रोध, अदयालुता, विलास, घमंड, अहं-कार और स्वपक्षपात आदि उद्वेगोंको आनन्दके लिए नहीं छोड़ता है, आध्यात्मिक कंजूस है। उसके पास किसी प्रकारका आध्यात्मिक सुख नहीं हो सकता। सासारिक आॅनन्दोंका धन होते हुए भी जिनके वह चिपटा रहता है उसकी आध्यात्मिक आवश्यकतायें और कलह बनी ही रहती हैं।

जो मनुष्य सासारिक विषयोंमें निपुण है, वह न माँगता है और न चोरी करता है। वह श्रम करके अपने कामकी वस्तुयें खरीदता है और संसार उसके खरेपनके लिए उसका सम्मान करता है। इसी प्रकार वह मनुष्य भी जो आध्यात्मिक विषयोंमें निपुण है, न माॅगता है और न चोरी करता है, किन्तु अन्तर्जगत्में श्रम करता और अपनी आध्यात्मिक प्राप्तियाॅ खरीदता है। समस्त संसार उसकी साधुता और धर्म्माचरणके लिए उसका सम्मान करता है।

सासारिक व्यवहारमें यह भी एक नियम है कि एक मनुष्य जो दूसरे मनुष्यकी किसी प्रकारकी सेवा अंगीकार करता है, उस मनु-ष्यसे अपना नियत वेतन लेकर संतुष्ट रहे। यदि मासके अन्तमें अ-पना वेतन लेनेके पश्चात् वह अपने स्वामीसे कहे कि "यद्यपि मैं अपनी सेवाके बदलेका वेतन तो ले चुका और उससे अधिक पानेका मैं न्यायतः अधिकारी भी नहीं हूॅ; परन्तु मुझे आपसे कुछ और भी

पानेकी आशा है, इसलिए मुझे कुछ और दीजिए," तो उसको और कुछ नहीं मिलेगा बल्कि वह अपने सेवापदसे हटा दिया जावेगा। परन्तु आध्यात्मिक संसारमें लोग जितना श्रम करते हैं, उससे अधिक और जितना प्राप्त करनेके वे अधिकारी हैं उससे भी ज्यादा, आध्यात्मिक सुख माँगनेको तय्यार हो जाते हैं और फिर भी अपने आपको मूर्ख स्वार्थी नहीं समझते। सांसारिक नियमानुसार प्रत्येक मनुष्य उतना ही प्राप्त करता है, जितना नियत हो जाता है और जितना वह काम करता है—न कम और न ज्यादा। वह जैसा और जितना करता है, उसका पुरस्कार भी वैसा ही और उतना ही पाता है। जितने कार्य और विचार वह करता है, उनका उतना ही और यथोचित बदला पाता है। नाना प्रकारके कार्योंमें जितनी उसकी करनी जुड़ती है, उतना ही वह उसका वेतन पाता है। इस नियमको स्मरण रखकर ज्ञानी पुरुष सदैव सन्तुष्ट, तृप्त और पूर्ण शान्तिसे रहता है, क्योंकि वह जानता है कि जो कुछ मुझे मिल रहा है (चाहे विपत्ति हो चाहे सम्पत्ति) मेरे कियेका वेतन अर्थात् फल मिल रहा है। यह महा नियम किसी भी मनुष्यको उसकी थोड़ीसी भी कमाईका बदला देनेमें धोखा नहीं देता है। जो इन नियमकी हँसी और शिकायत करता है, उससे यह नियम कहता है—"क्यों मित्र, तेरे और मेरे बीचमें क्या यह नहीं ठहरी है कि तुझे प्रतिदिन एक पाई मिलेगी, न उससे अधिक और न कमती!"

यदि कोई मनुष्य धनवान् हो जावे, तो उसको मितव्यय अर्थात् किफ़ायतशारी ग्रहण करके अपने धनको यथासाध्य सुरक्षित रखना चाहिए, जिससे वह एक उचित और यथेष्ट पूँजी इकट्ठी करके उसे किसी उपयोगी हुनर या व्यापारमें लगा दे। धनके सम्बन्धमें न उसको

अधिक ढीला होना चाहिए और न उससे अधिक चिपटा रहना चाहिए। ऐसा करनेसे वह जगत्में निपुण और धनी कहलाता है। निकम्मा, सुस्त, और उड़ाऊ मनुष्य धनवान् नहीं हो सकता। वह व्ययी और उपद्रवी होता है। ठीक इसी प्रकार जिसको अन्तर्जगत्में अध्यात्मिक वस्तुओंसे धनी बनना है, उसे भी चाहिए कि वह अपनी मानसिक शक्तियोंको व्यर्थ व्यय नहीं करे, उनको मितव्ययताके साथ एकत्रित करे। वह अपनी जिह्वा और उद्वेगोंको रोक रक्खे, अपनी शक्तिको व्यर्थ मिथ्यावाद, अहंकारपूर्ण तर्क-कुतर्क और क्रोधादि आवेगोंमें नष्ट न करे। इस प्रकार वह बुद्धिका कोष इकट्ठा कर लेगा, जो उसकी आध्यात्मिक पूँजी बन जायगी। उसे इस आध्यात्मिक पूँजीको दूसरोंकी भलाईके लिए लगाना चाहिए। इस पूँजीको वह जितना अधिक काममें लगायगा, उतनी ही यह बढ़ेगी। इस प्रकार मनुष्य स्वर्गीय निपुणता और स्वर्गीय धनको बढ़ाता है। जो मनुष्य अपने अन्धे उद्वेगों और लालसाओंका अनुयायी बनता है, अपने मनको वशमें नहीं रखता, वह आध्यात्मिक व्यर्थव्ययी है, वह स्वर्गीय पवित्र वस्तुओंका धनी कदापि नहीं बन सकता।

यदि हमें पर्वतके शिखरपर पहुँचना है, तो उसपर चढ़ना पड़ेगा। पहले मार्ग ढूँढ़ना होगा, फिर उसपर सावधानीसे चलना होगा। चढ़नेवालेको श्रम और कठिनाइयोंके डरसे या शरीरके थक जानेसे चढ़ना बंदकर वापस नहीं लौट आना चाहिए, नहीं तो चढ़ाईका कार्य सिद्ध नहीं होगा। ठीक इसी तरह जिस मनुष्यको मानसिक और धार्मिक जीवनके उन्नत शिखरपर पहुँचना है, उसको अपने स्वयंके बलसे चढ़ना पड़ेगा। उसको पहले मार्ग ढूँढ़ना चाहिए और फिर श्रमके साथ उसपर चढ़ना चाहिए। उसको किसी डर

या घबराहटसे चढ़नेके कार्यको बन्द करके वापस नहीं मुड़ना चाहिए, बल्कि कठिनाइयोंको जीतकर, आपत्तियोंको झेलकर और लालच आदिके वशीभूत न होकर आगे बढ़ना चाहिए। ऐसा करनेसे अन्तमें वह आध्यात्मिक सम्पूर्णताके प्रख्यात शिखरपर पहुँच जावेगा। उद्वेग, छोभ और दुःखका जगत् उसके नीचे रह जायगा और स्वर्गीय पवित्रताका विस्तृत, मौन और असीम नभोमंडल उसके सिर-पर रहेगा।

यदि किसी मनुष्यको किसी दूरस्थित नगर या स्थानको पहुँचना है, तो उसको यात्रा करनी होगी। ऐसा कोई भी उपाय नहीं है कि जिससे बिना यात्रा किये ही वह वहाँ पहुँच जाय। उस यात्राके लिए जो जो आवश्यक साधन और प्रयत्न हैं, उन्हें वहाँ पहुँचनेके लिए करने ही पड़ेंगे। यदि वह पैदल चलेगा तो उसको बहुत श्रम करना पड़ेगा, परन्तु धन कुछ भी नहीं खरचना होगा। यदि वह घोड़ागाड़ी या रेलगाड़ीसे जायगा, तो उसको शारीरिक श्रम तो कम करना पड़ेगा; परन्तु वह धन जो उसने श्रमसे कमाया है अधिक खर्च करना पड़ेगा। किसी भी स्थानपर जानेके लिए मनुष्यको श्रम करना पड़ता है, यह एक नियम है। यही नियम आध्यात्मिक जगत्का भी है। यदि किसीको किसी आध्यात्मिक ठिकानेपर—पवित्रता, दया, बुद्धिमत्ता या शान्तिपर—पहुँचना है, तो उसको यात्रा करनी पड़ेगी और श्रम करना होगा। ऐसा कोई नियम नहीं है जिससे वह तत्क्षण और अनायास ही इन सुंदर आध्यात्मिक नगरोंको पहुँच जावे। उसको सबसे सीधा मार्ग ढूँढ़ना पडेगा, फिर आवश्यक श्रम करना होगा, तब कहीं अपने इच्छित स्थानपर वह पहुँचेगा। उपर्युक्त नियम उस ईश्वरीय महा नियमके कुछ अंग हैं, जिनको आनन्द और आध्यात्मिक

जीवनके सम्पूर्ण मनुष्यत्व और परिपक्कता प्राप्त करनेके पूर्व जानना और अङ्गीकार करना आवश्यक है। बाह्य जगत्का कोई भी ऐसा नियम नहीं है, जो अन्तर् (आध्यात्मिक) जगत्में ठीक वैसा ही प्रयुक्त न होता हो। जैसे बाहरी वस्तुएँ आध्यात्मिक यथार्थताओंकी छाया और उदाहरण हैं, उसी प्रकार सासारिक बुद्धिमत्ता भी आध्यात्मिक और ईश्वरीय बुद्धिका प्रतिबिम्ब है। मानुषिक जीवनके सांसारिक वस्तुओंमें जो सीधे और साधारण नियम लागू होते हैं और जिनके विषयमें लोग कोई भी प्रश्न नहीं उठाते बल्कि उन्हें उनकी सादगी और सरलताके कारण सम्पूर्णतासे मानते और उन्हीके अनुसार चलते हैं, वे ही नियम उसी शुद्ध यथार्थताके साथ अन्तर्जगत्की आध्यात्मिक वस्तुओंमें भी लगते हैं और जब यह विषय समझमें आजाता है और स्थूल संसारके अनुसार सूक्ष्म संसारमें भी मनुष्य यही नियम पालने लग जाता है, तब वह यथार्थ ज्ञानके समीप पहुँच जाता है। उसके दुःख समाप्त और उसके सन्देह दूर हो जाते हैं।

जीवन एक ऐसा खुला हुआ न्याय है, जिसमें किसी तरहके समझौतेको स्थान नहीं है। इसका प्रयोग सच्चा और अजीत तर्करूप है। नियम सदा राज्य करता है और नियमका हृदय अर्थात् अन्तर्भाग प्रेम है। पक्षपात और मनोविकार नियम और प्रेमके विरुद्ध हैं। संसार किसीका पक्ष नहीं करता। यह न्यायशील है। जो जैसा करता है, उसको यह ठीक वैसा ही फल देता है। संसारका सब कुछ अच्छा है, क्योंकि सब कुछ नियमवद्ध है और प्रत्येक वस्तुके नियमवद्ध होनेके कारण मनुष्य जीवनमें उचित मार्ग ढूँढ़ सकता है और उसे ढूँढ़कर हर्षित और प्रसन्न हो सकता है। "भले मनुष्यपर जीवनमें क्या मृत्युके पश्चात् भी कोई आपत्ति नहीं आ सकती।" ईसा-

मसीहने सूलीपर चढ़नेकी आपत्तिको भी श्रेष्ठ निर्दिष्ट कर ली और दण्ड देनेवालोंको उपालंभ या उलहना नहीं दिया। उन्होंने कहा— " कोई भी मेरे प्राण नहीं ले सकता । मैं स्वयं अपने जीवनको छोड़ता हूँ। " इस प्रकार उन्होंने स्वयं अपना अन्त कर लिया।

वह मनुष्य जो अपने जीवनको सरल बनाकर और मनको शुद्ध करके अस्तित्वकी सुन्दर सरलताको समझने लग गया है, सब वस्तुओंकी नियमबद्ध गतिको पहिचानता है, अपने विचार और कार्योंसे स्वयं उसको और संसारको जो फल मिलता है उसे जानता है और उन मानसिक कारणोंके परिणामोंको भी जिनको वह उत्पन्न करता है समझता है। फिर वह ऐसे ही शुद्ध विचार और कार्य करता है जिनके उत्पन्न होनेमें आनन्द, जिनके वृद्धिगत होनेमें आनन्द और जिनके सम्पूर्ण होनेमें भी आनन्द प्राप्त होता है । पूर्वमें अज्ञानताके कारण उससे जो कार्य बन चुके हैं उनके जो उचित परिणाम और फल मिलेंगे, उनको नम्रतासे स्वीकार करके न वह निन्दा करता है, न डरता है और न प्रश्न करता है, बल्कि जगत्के महानियमके ज्ञान और आज्ञापालनमें पूर्ण आनन्दित रहता है।

जैसे हम चाहते हैं वैसे ही रंगके सूत्रोंसे अपने जीवनरूपी कपड़ेको बुनते हैं और कर्मफल तथा भाग्यकी भूमिमें जैसा हम बोते हैं वैसा ही काटते हैं। यदि हम जैसा बोते वैसा ही पाते और जैसा करते वैसा ही भरते हैं, तो हमें दुःखको प्रेमसे स्वीकार करना चाहिए और जख्मी होनेको भी मरहम लगाना समझना चाहिए।

१४–सुखपूर्ण पर्यवसान
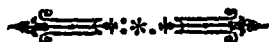
धर्म ही सत्यताको प्राप्त करता है, धर्मको कोई भी नहीं टाल सकता। धर्मका हृदय प्रेम है और इसका अन्त शाति और मधुर सम्पूर्णता है। अतएव धर्मका पालन करो। —दि लाईट आफ एशिया।

जब सौभाग्यसे तेरा कार्य समाप्त हो जायगा, तो दोष भी गुण हो जायँगे और तेरे सब व्रत ईश्वरीय प्रकाशके व्रतमे सयुक्त हो जायँगे।

—व्हाइटर।

जीवनके उन्नत, पवित्र और सुन्दर होनेके कारण इसके कई प्रकारके सुखी अन्त होते हैं। जगत्में यद्यपि अपवित्रता, अज्ञानता, अश्रुपात, दुःख और शोक कम नहीं हैं, परन्तु साथ ही पवित्रता, ज्ञान, हास्य, विश्राम और आनन्द भी बहुत हैं। कोई भी पवित्र विचार और कोई भी स्वार्थशून्य कार्य अपना सुखी परिणाम उत्पन्न किये बिना नही रहता और ऐसा प्रत्येक परिणाम एक सुखी अन्त है।

एक सुखी और मनोहर घरका प्राप्त कर लेना एक सुखी अन्त है। एक सफल जीवन एक सुखी अन्त है। एक कार्यका भले प्रकार सिद्ध होना एक सुखी अन्त है। कृपालु मित्रोंसे घिरे हुए रहना एक सुखी अन्त है। पारस्परिक विरोधोंको शान्त करना, झगड़ोंको मिटा देना, कहे हुए दुर्वचनोंका स्वीकार करना और क्षमा प्राप्त कर लेना, मित्रका मित्रसे प्रेम कर लेना—ये सब सुखी अन्त हैं। उस वस्तुको

प्राप्त कर लेना जिसको चिरकाल और बहुत कालसे खोजा हो, अश्रु-पातसे हर्ष प्राप्त कर लेना, पापके दु:खदायक और घोर स्वप्नसे जाग-कर उज्ज्वल सूर्यप्रकाशमें आजाना, बहुत खोजके पश्चात् जीवनमें स्वर्गीय मार्ग प्राप्त कर लेना—ये सब आनन्दपूर्ण अन्त हैं।

जो इस पुस्तकमें बतलाई हुई पगडंडियोंपर दृष्टि डालेगा, खोजेगा और चलेगा, वह बिना ढूँढ़े ही सुखी अन्तको प्राप्त हो जावेगा। उसका सम्पूर्ण जीवन सुखी अन्तोंसे परिपूर्ण रहेगा। जो सत्य आरम्भ करता है और सत्य प्रकार चलता है, उसको आनन्ददायक फलोंको प्राप्त करनेकी इच्छा और गवेषणाकी आवश्यकता नहीं है। वे तो अपने आप उपस्थित हो जाते हैं। वे परिणामके रूपमें मिलते हैं। वे जीवनके सार और यथार्थतायें हैं।

कई सुखी अन्त ऐसे हैं, जो केवल स्थूल शरीर अर्थात् बाह्य जगत्से सम्बन्ध रखते हैं। वे क्षणिक होते हैं, शीघ्र ही व्यतीत हो जाते हैं। कई सुखी अन्त सूक्ष्म शरीर अर्थात् अन्तर्जगतसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। वे स्थायी और अमर होते हैं, ये व्यतीत नहीं होते। मित्र-मिलन, भोग-विलास और स्थूल पदार्थोंकी प्राप्ति ये सब रुचिदायक और मधुर हैं, परन्तु परिवर्तनशील और मुरझानेवाले हैं। पवित्रता, बुद्धिमत्ता, सत्यज्ञान ये और भी मधुर हैं। ये न कभी बदलते हैं और न मुरझाते हैं। मनुष्य जहाँ जाय, वहीं अपनी संसारिक प्राप्तियोंको साथ ले जा सकता है, परन्तु शीघ्र ही उसे उनका साथ छोड़ना पड़ता है और वह यदि उनहीपर नितान्त निर्भर रहता है और उनहीसे अपना सर्व सुख प्राप्त करता है, तो जिस दिन उन पदार्थोंका साथ छूटेगा, शून्य और दुःखी हो जायगा—उसका आध्यात्मिक अन्त उपस्थित हो जायगा। परन्तु जिसने आध्यात्मिक वस्तुओंकी प्राप्ति

कर ली है, वह अपने सुखके भाडारसे कदापि पृथक् नही हो सकता। उसको उनका साथ कभी न छोड़ना पड़ेगा और सकल भूंमडल-पर जहाँ कहीं वह जायगा अपनी प्राप्तियोंको साथ रख सकेगा। उसका आध्यात्मिक अन्त आनन्दकी परिपूर्णतामें होगा।

जिसने अहंबुद्धिका त्याग करके उपर्युक्त स्वार्थशून्य जीवन प्राप्त कर लिया है, वही अमर आनन्दमें मग्न रहता है। वह इसी जीवनमें, अभीसे, स्वर्गके राज्यमें, निर्वाणमें, बहिश्तमें, नवीन जेरु-सलममें, और ज्यूपीटरके आलिम्पस इत्यादिमें पहुँच गया है। वह जीवनकी अन्तिम एकता अर्थात् परमात्माको जानता है। उसकी आत्मा परमात्माकी गोदमें विश्राम करती है।

उस मनुष्यका विश्राम कैसा मधुर और उसका आनन्द कैसा गहरा है जिसने अपने हृदयको लोभ, लालच, ईर्षा और अन्धी लाल-साओंसे मुक्त कर लिया है, जिसपर किसी प्रकारके कडुवेपन या स्वार्थकी छायाका लेश भी नहीं रहा है और जो संसारको असीम दया और प्रेमके साथ देखता हुआ किसी प्रकारके पक्षपात और राग-द्वेषके बिना अपने अन्तःकरणसे इस आशीर्वादको देता है—

ईश्वर समस्त प्राणधारियोंको शांति दे।

ऐसा मनुष्य उस सुखी अन्तको पहुँच गया है जो उससे वापस नही छीना जा सकता। क्योंकि यह जीवनकी सम्पूर्णता, शान्तिकी पराकाष्ठा और परमानन्दकी पूर्त्ति है। आनन्दकी पगडडियाँ जीवन-मार्गसे दूर नहीं हैं। वे निकट हैं और प्राप्य है, परन्तु स्वार्थशून्य श्रमसे ढूँढ़नेपर मिलती हैं।

हिन्दीकी सर्वोत्तम ग्रन्थमाला

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर।

यह ग्रन्थमाला सन् १९१२ से निकल रही है और इसमें अबतक एकसे एक बढ़कर ८० ग्रन्थ निकल चुके हैं जिनकी तमाम साहित्यसेवियोंने जी खोलकर प्रशंसा की है। इसके सभी ग्रन्थ जिस प्रकार भीतरसे उत्कृष्ट होते हैं, उसी प्रकार इनकी छपाई-सफाई भी दर्शनीय होती है। मूल्य भी अपेक्षाकृत कम रक्खा जाता है। इसके सिवाय इसके स्थायी ग्राहकोंको बड़ा भारी सुभीता यह है कि उन्हें इसके सभी ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं और केवल आठ आने 'प्रवेश फी' दे देनेसे प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी इसका स्थायी ग्राहक बन सकता है।

नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, काव्य, इतिहास, विज्ञान, आरोग्य आदि विषयोंके समान आनन्दकी पगडंडियोंके सदृश अध्यात्म विषयके भी अनेक ग्रन्थ इस ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुए हैं जिनमेंसे नीचे लिखे ग्रन्थोंकी ओर हम अपने पाठकोंका ध्यान खास तौरसे आकर्षित करते हैं—

प्रभावशाली जीवन

अर्थात् व्यक्तित्व और उसकी प्राप्तिका मार्ग। यह पुस्तक जेम्स एलेन महाशयकी धर्मपत्नी और उन्हीं जैसे विचार रखनेवाली श्रीमती लिली एलेनकी पुस्तक Personality, Its cultivation and Power and How to Attain का अनुवाद है। इसमें २० अध्याय हैं—१ व्यक्तित्व, २ सम्यक् विश्वास, ३ अत्यज्ञान, ४ श्रुतिज्ञान, ५ निश्चय और तत्परता, ६ आत्मविश्वास, ७ पारगामिता, ८ व्यवहार, ९ शारीरिक संस्कार, १० मानसिक संस्कार, ११ नैतिक संस्कार, १२ अध्यात्मिक संस्कार, १३ आत्मानुवीक्षण, १४ मुक्ति, १५ आत्मविकास, १६ आत्मसंयम और मानसिक समता, १७ स्वतन्त्रता, १८ परिवर्तन, १९ समता, २० मनन और ध्यान। अध्यायोंके नामोंसे ही पुस्तकमें क्या है, इसका अनुमान पाठक कर सकेंगे। प्रत्येक नवयुवकको इस ग्रन्थका अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य लगभग १॥)

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति

जेम्स एलेनके ही समान एक और दिव्यदृष्टि लेखक 'डा० ओरिसन स्वेट मार्डेन' हैं। यह उनके 'पीस, पावर एण्ड प्लेण्टी,' (Peace, Power & Plenty) नामक ग्रन्थका अनुवाद है। निराश, निरुत्साह, मृतप्राय और

भग्नहृदय लोगोंको आश्वासन, उत्साह और सजीवनी शक्ति देनेवाली यह अद्वितीय पुस्तक है। मूल पुस्तक जिस समय अंगरेजीमें प्रकाशित हुई थी, उस समय इसकी इतनी मॉग हुई थी कि लगभग दो वर्ष तक हर महीने इसकी एक आवृत्ति प्रकाशित होती रही थी। इससे पाठक इसकी उत्तमता और लोकप्रियताका अनुमान कर सकते है। इसमे १९ अध्याय है—१ शरीर और मन, २ आरोग्यका रहस्य, ३ दरिद्रता, ४ सम्पन्नता, ५ निद्रा, ६ मानसिक अवस्था और आरोग्य, ७ मानसिक चिकित्सा, ८ कल्पनाशक्ति और आरोग्य, ९ आरोग्यपर विचारोंका प्रभाव, १० वृद्धावस्थाका निवारण, ११ आत्मविश्वास, १२ दृढनिश्चय, १३ मानसिक सूचना, १४ मानसिक चिन्ता, १५ भय, १६ आत्मसयम, १७ प्रसन्नता, १८ दु खविस्मरण, १९ जैसी करणी वैसी भरणी।

प्रताप-सम्पादकने लिखा है-" पुस्तक दर अस्ल मनुष्यके चरित्रनिर्माणकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसका प्रत्येक परिच्छेद उत्तम भावों, उत्साहपूर्ण बातो और स्फूर्तिदायक विचारोंसे ओतप्रेत है। इसके पढनेसे नवीन उत्साह, नयी उमग और नवजीवनका सञ्चार हो जाता है। हम प्रत्येक नवयुवकसे इस पुस्तकको पढकर लाभान्वित होनेकी आशा करते हैं। " मूल्य १॥), सजिल्दका २)

जेम्स एलेनके अन्य ग्रन्थ

१ शान्तिमार्ग मू० ≡)
२ आत्मरहस्य मू० ≡)
३ मुक्तिका मार्ग मू० ।≡)
४ विजयी जीवन मू० ।≡)॥
५ सुखप्राप्तिका मार्ग मू० ।=)
६ जीवन्मुक्ति मू० ॥=)
७ जीवनके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर प्रकाश मू० ॥)
८ जैसे चाहे वैसे बन जाओ मू० ≡)॥
९ सुख और सफलताके मूल सिद्धान्त मू० =)॥
१० प्रातःकाल और सायंकालके विचार मू० ।=)
११ तन, मन, धन और परिस्थितियोंका नेता मू० ।)
१२ हृदय-तरंग मू० ।=)॥

राष्ट्रीय विद्यालयों, तथा सरकारी स्कूलोंमें प्रचलित,
पाठ्य पुस्तकों पारितोषिक और पुस्तकालयोंके
लिए विशेष उपयोगी

भारतीय ग्रन्थमाला

" प्रत्येक देश-प्रेमीको इस मालाकी पुस्तकें अपनाकर, इसके व्यवस्थापक को साहित्यकी वृद्धिके लिए उत्साहित करना चाहिए " ।

—सैनिक ।

It is the duty of every Hindi-knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing

—The Education

१-भारतीय शासन Indian Administration—" राजनैतिक ज्ञानके लिए आजेका काम देनेवाली " और विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों "और पाठकोंके बडे कामकी " । छठा संस्करण । मूल्य ॥।=)

२-भारतीय विद्यार्थि विनोद भाषा, विज्ञान, इतिहास आदि पाठ्य विषयोंकी आलोचना, और मातृभाषा आदि आठ विचारणीय विषयोंकी विवेचना " नये ढंग की रचना । " दूसरा संस्करण । मूल्य ।=)

३-भारतीय राष्ट्र निर्माण Indian Nation Building—राष्ट्रीय समस्याओंका " बहुत ही योग्यता और स्वतन्त्रतासे विचार किया गया है । " दूसरा संस्करण । मूल्य ॥।=)

४-भावना—कल्याण-पथकी प्रदर्शिका । गद्यकाव्य । स्फूर्तिका सचार करनेवाली । नवयुवकोंके लिए विशेष उपयोगी ओजस्विनी रचना । मूल्य ॥।=)

५-सरल भारतीय शासन—साधारण योग्यतावालोंके लिए राजनीतिकी अत्यन्त आवश्यक पुस्तक । मूल्य ॥)

६-भारतीय जागृति—Indian Awakening—गत सौ वर्षोंका धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास । मूल्य ॥।=)

७-विश्व-वेदना—मानव समाजके भिन्न भिन्न पीडित अंग-मजदूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवायें वेश्याएं, कैदी और अनाथ आदि अपनी अपनी वेदना बता रहे हैं । उनकी व्यथा सुनिए । कष्टपीडितोंकी वेदनाके निवारणके विषयमें भी विचार किया गया है । मूल्य ॥)

८–भारतीय चिन्तन—राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आदि विषयोंका मनोहर वर्णन । मूल्य ।।।≈)

९–भारतीय राजस्व—Indian Finance—दो सौ करोड़ रुपये-के वार्षिक सरकारी आय-व्ययका ज्ञान प्राप्त कर आर्थिक स्वराज्य प्राप्त कीजिए । मूल्य ।।।≈)

१०–निर्वाचन नियम—Election Guide—व्यवस्थापक सस्थाओ, म्यूनिसिपैलिटियों और जिला बोर्डोंके निर्वाचकों और उम्मेदवारोंके लिए अत्यु-पयोगी । मूल्य ।।-)

११–बालब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—एक आधुनिक आदर्श महिलाका मनन करने योग्य, सचित्र जीवनचरित्र । स्त्रीशिक्षाकी अनूठी पुस्तक । साधारण, सजिल्द और राजसस्करण, मूल्य क्रमश १।।), १।।।), ३)

१२—राजनीतिशब्दावली Political Terms—राजनीतिके हिन्दी-अगरेजी तथा अगरेजी हिन्दी पर्यायवाची शब्दोका उत्तम सग्रह । मूल्य ।-)

१३—नागरिक शिक्षा Elementary Civics—सरल भाषामे, सरकारके कार्यों—सेना पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धदे, शिक्षा स्वास्थ्य आदि विषयोंका विचार । सचित्र । मूल्य ।।)

१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन Constitution of the Br Empire—इगलैडकी तथा उसके साम्राज्यके स्वतंत्र तथा परतत्र उपनि-वेशो, एव अन्य भागोकी शासनपद्धतिका सरल सुबोध वर्णन । मूल्य ।।।≈)

१५—श्रद्धाञ्जलि—" यह श्रद्धाके पथमें पूर्व और पश्चिम, नवीन ओर प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और विधर्मी सबकी अर्चना कर रही है । वीर-पूजामें प्रेरणा, उत्साह और प्राणकी मॉग की गई है । " इसमें २९ महापु-रुषोंके दर्शन है । मूल्य ।।।≈)

१६—भारतीय नागरिक—इसमे भारतीय नागरिकोंके अधिकार और कर्तव्योंके अतिरिक्त, किसानो, जमीदारों, लेखकों, सम्पादकों, विद्यार्थियों और अध्यापकों, महिलाओं और दलित जातियों आदिको देशोन्नतिके लिए दी जाने वाली सुविधायें बतलाई गई है । मूल्य ।।)

पता—भगवानदास केला

भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन (मथुरा)

ये सब पुस्तकें ' हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, गिरगॉव, बम्बई ' से भी मिल सकती है ।